ACKNOWLEDGEMENT

We sincerely express our gratitude to **"Teerthdham Mangalayatan"** from where we have sourced **"Sadhya Siddhi Ka Achalit Marg"**

"Teerthdham Manglayatan"have taken due care, However, if you find any typographical error, for which we request all the reader to kindly inform us at info@vitragvani.com or to "**Teerthdham Mangalayata**" at Info@mangalayatan.com

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

साध्य-सिद्धि का अचलित मार्ग

परम पूज्य भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत
श्री समयसार परमागम की गाथा 17-18 पर
नैरोबी, अफ्रीका पञ्च कल्याणक के अवसर पर हुए
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन

हिन्दी अनुवाद / सम्पादन
देवेन्द्रकुमार जैन
तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़

प्रकाशन सहयोग

मङ्गलायतन मुद्रणालय
डी.पी.एस. सिटी ऑफिस, आगरा रोड, अलीगढ़

प्रकाशक :

तीर्थधाम मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट
सासनी-204216, हाथरस (उत्तरप्रदेश) भारत

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ
21 अक्टूबर 2011, तीर्थधाम मङ्गलायतन में आयोजित भगवान श्री महावीरस्वामी निर्वाणोत्सव एवं पुरुषार्थमूर्ति श्री निहालचन्द्रजी सोगानी के जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर

न्यौछावर राशि : 10.00 रुपये मात्र

AVAILABLE AT -

— **TEERTHDHAM MANGALAYATAN**
Sasni - 204216, Hathras (U.P.) India
e-mail : info@mangalayatan.com

— **PANDIT TODARMAL SMARAK BHAWAN**
A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015 (Raj.)

— **SHRI HITEN A. SHETH,**
SHREE KUNDKUND-KAHAN PARMARTHIK TRUST,
302, Krishna-Kunj, Plot No. 30, Navyug CHS Ltd.,
V.L. Mehta Marg, Vile Parle (W),
Mumbai - 400056
e-mail : vitragva@vsnl.com / shethhiten@rediffmail.com

— **SHRI KUNDKUND KAHAN JAIN SAHITYA KENDRA**
Songarh (Guj.)

टाइप सेटिंग :
मङ्गलायतन ग्राफिक्स, अलीगढ़

मुद्रक :
मङ्गलायतन मुद्रणालय, अलीगढ़

प्रकाशकीय

परमोपकारी चरम तीर्थङ्कर शासननायक भगवान श्री महावीरस्वामी के निर्वाणकल्याणक महोत्सव का कार्यक्रम, तीर्थधाम मङ्गलायतन में अत्यन्त भव्यता के साथ मनाया जाता है। इस अवसर पर श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन एवं श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर ने सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज में अपना अमिट प्रभाव स्थापित किया है। इस वर्ष 21 से 27 अक्टूबर 2011 तक आयोजित इस शिक्षण-शिविर में, पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्यभक्त एवं गुरुदेशना को सफल करके, गुरु साधनाभूमि तीर्थधाम सुवर्णपुरी के इतिहास में स्वर्णिम अध्याय जोड़नेवाले, पुरुषार्थमूर्ति श्री निहालचन्द्रजी सोगानी का जन्म शताब्दी वर्ष मनाया जाना भी एक ऐतिहासिक उपलब्धि है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रतिदिन पूज्य गुरुदेवश्री के माङ्गलिक सी.डी. प्रवचन चलते हैं एवं मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा उन पर प्रश्नोत्तर करके प्रवचन में समागत विषय का मन्थन किया जाता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि तीर्थधाम मङ्गलायतन की इस प्रवृत्ति ने मुमुक्षु समाज को अत्यन्त प्रभावित किया है और अनेक स्थानों पर इस पद्धति का अनुकरण किया जा रहा है।

इस वर्ष आयोजित शिविर के अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री के नैरोबी, अफ्रीका पञ्च कल्याणक के अवसर पर हुए समयसार परमागम की गाथा 17-18 के प्रवचन सुनते समय सभी आत्मार्थी बन्धुओं के हाथ में

प्रवचन ग्रन्थ हो तो गुरुदेवश्री के गम्भीर भावों को समझने में सरलता रहे — इस उद्देश्य से यह ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। तीर्थधाम मङ्गलायतन का यह प्रथम शब्दश: प्रकाशन है। इस प्रवचन ग्रन्थ में व्यक्तिगत सम्बोधन, नाम आदि नहीं लिये गये हैं।

वर्तमान समय में पूज्य गुरुदेवश्री के अनेक ग्रन्थों पर हुए प्रवचनों के शब्दश: प्रकाशन ने सी.डी. प्रवचनों में आत्मार्थी बन्धुओं की उपस्थिति में उल्लेखनीय अभिवृद्धि की है, जो सर्व विदित है।

इस प्रवचन ग्रन्थ का सङ्कलन, हिन्दी अनुवाद एवं प्रस्तुतिकरण श्री देवेन्द्रकुमार जैन (बिजौलियां), तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा किया गया है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में हमें प्रकाशनकर्ता के रूप में **मङ्गलायतन मुद्रणालय, अलीगढ़** हस्ते **श्री नीरज जैन** का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है। तदर्थ हम उनके आभारी हैं।

सभी जीव इस प्रवचन ग्रन्थ का अनुशीलन कर अपने जीवन में साध्य की सिद्धि करें — यही भावना है।

पवन जैन
श्री आदिनाथ–कुन्दकुन्द–कहान
दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़

ॐ

परमात्मने नमः

साध्य–सिद्धि का अचलित मार्ग

समयसार

गाथा 17–18

अब, इसी प्रयोजन को दो गाथाओं में दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं —

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरिद पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥17॥
एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥18॥

ज्यों पुरुष कोई नृपति को भी, जानकर श्रद्धा करे।
फिर यत्न से धन अर्थ वो, अनुचरण राजा का करै ॥17॥
जीवराज को यों जानना, फिर श्रद्धना इस रीति से।
उसका ही करना अनुचरण, फिर मोक्ष अर्थी यत्न से ॥18॥

गाथार्थ : [यथा नाम] जैसे **[कः अपि]** कोई

[**अर्थार्थिकः पुरुषः**] धन का अर्थी पुरुष [**राजानं**] राजा को [**ज्ञात्वा**] जानकर [**श्रद्दधाति**] श्रद्धा करता है, [**ततः पुनः**] और फिर [**तं प्रयत्नेन अनुचरति**] उसका प्रयत्नपूर्वक अनुचरण करता है अर्थात् उसकी सुन्दर रीति से सेवा करता है, [**एवं हि**] इसी प्रकार [**मोक्षकामेन**] मोक्ष के इच्छुक को [**जीवराजः**] जीवरूपी राजा को [**ज्ञातव्यः**] जानना चाहिए, [**पुनः च**] और तत्पश्चात् [**स एव अनुचरितव्यः**] उसी का अनुचरण करना चाहिए अर्थात् अनुभव के द्वारा तन्मय हो जाना चाहिए।

टीका : निश्चय से जैसे कोई धन का अर्थी पुरुष बहुत उद्यम से पहले तो राजा को जाने कि यह राजा है, फिर उसी का श्रद्धान करे कि 'यह अवश्य राजा ही है, इसकी सेवा करने से अवश्य धन की प्राप्ति होगी' और फिर उसी का अनुचरण करे, सेवा करे, आज्ञा में रहे, उसे प्रसन्न करे; इसी प्रकार मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए, और फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिए कि 'यही आत्मा है, इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा' और फिर उसी का अनुचरण करना चाहिए — अनुभव के द्वारा उसमें लीन होना चाहिए क्योंकि साध्य जो निष्कर्म अवस्थारूप अभेद शुद्धस्वरूप, उसकी सिद्धि की इसी प्रकार उपपत्ति है, अन्यथा अनुपपत्ति है (अर्थात् इसी प्रकार से साध्य की सिद्धि होती है, अन्य प्रकार से नहीं)।

(इसी बात को विशेष समझाते हैं —) जब आत्मा को, अनुभव में आने पर अनेक पर्यायरूप भेदभावों के साथ मिश्रितता होने पर भी सर्व प्रकार से भेदज्ञान में प्रवीणता से 'जो यह अनुभूति है, सो ही मैं हूँ' ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ, इस आत्मा को

जैसा जाना है, वैसा ही है; इस प्रकार की प्रतीति जिसका लक्षण है ऐसा, श्रद्धान उदित होता है, तब समस्त अन्यभावों का भेद होने से नि:शङ्क स्थिर होने में समर्थ होने से आत्मा का आचरण उदय होता हुआ आत्मा को साधता है। ऐसे साध्य आत्मा की सिद्धि की इस प्रकार उपपत्ति है।

परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा, आबाल –गोपाल सबके अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी, अनादि बन्ध के वश पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से मूढ–अज्ञानीजन को 'जो यह अनुभूति है, वही मैं हूँ' — ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता और उसके अभाव से, अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान समान है इसलिए, श्रद्धान भी उदित नहीं होता, तब समस्त अन्यभावों के भेद से आत्मा में नि:शङ्क स्थिर होने की असमर्थता के कारण आत्मा का आचरण उदित न होने से आत्मा को नहीं साध सकता। इस प्रकार साध्य आत्मा की सिद्धि की अन्यथा अनुपपत्ति है।

भावार्थ : साध्य आत्मा की सिद्धि दर्शन–ज्ञान–चारित्र से ही है, अन्य प्रकार से नहीं, क्योंकि पहले तो आत्मा को जाने कि यह जो जाननेवाला अनुभव में आता है, सो मैं हूँ। इसके बाद उसकी प्रतीतिरूप श्रद्धान होता है; क्योंकि जाने बिना किसका श्रद्धान करेगा? तत्पश्चात् समस्त अन्यभावों से भेद करके अपने में स्थिर हो; इस प्रकार सिद्धि होती है, किन्तु यदि जाने ही नहीं, तो श्रद्धान भी नहीं हो सकता और ऐसी स्थिति में स्थिरता कहाँ करेगा? इसलिए यह निश्चय है कि अन्य प्रकार से सिद्धि नहीं होती।

प्रवचन – 1

यह 'समयसार', 17-18 गाथा! आज हिन्दी में चलती है। पहले ऊपर (लिखा) है? **अब, इसी प्रयोजन को दो गाथाओं में दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं** – क्या कहते हैं? कि यह आत्मा जो है, उसमें निश्चयदर्शन, ज्ञान और चारित्र (है), वह भी भेद और व्यवहार है। एक आत्मा का सेवन करना, यह निश्चय और यथार्थ है। सोलहवीं गाथा में यह कहा। (अब) इसी बात के प्रयोजन को इन (दो गाथाओं में) कहते हैं। सोलहवीं गाथा (में यह कहा) –

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो॥

निश्चयस्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हुआ (– ऐसा) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र – व्यवहार है। तीन भेद हुआ न? (इसलिए) व्यवहार (कहा) है। तीन (भेद से) रहित एक (रूप) चैतन्यमूर्ति का सेवन करना, चैतन्यमूर्ति का अनुभव करना – वह निश्चय एक है। यह प्रयोजन (अब) 17-18 गाथा में कहते हैं। (यहाँ) कहा न? **अब, इसी प्रयोजन को... इसी प्रयोजन को** अर्थात् आत्मा का सेवन करना, श्रद्धा-ज्ञान करना। आत्मा का (सेवन) करना, (अर्थात्) श्रद्धा-ज्ञान – ऐसे भेद भी

नहीं; आत्मा का अनुभव करना। **इसी प्रयोजन को दो गाथाओं में दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं।**

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरिद पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥17॥
एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥18॥

ज्यों पुरुष कोई नृपति को भी, जानकर श्रद्धा करे।
फिर यत्न से धन अर्थ वो, अनुचरण राजा का करै ॥17॥
जीवराज को यों जानना, फिर श्रद्धना इस रीति से।
उसका ही करना अनुचरण, फिर मोक्ष अर्थी यत्न से ॥18॥

टीका – प्रथम दृष्टान्त देते हैं। **निश्चय से जैसे कोई धन का अर्थी...** 'धन का अर्थी' (कहा है)। धन का अर्थी न हो, उसकी यहाँ बात नहीं (है)। जिसको धन चाहिए और धन की जिसको लालसा है – ऐसा **धन का अर्थी पुरुष बहुत उद्यम से पहले तो राजा को जाने...** (यहाँ) राजा की बात ली है; सेठ की बात नहीं ली है। कोई करोड़पति या अरबपति सेठ (हो) उसकी सेवा करे – ऐसे नहीं लिया है। राजा की सेवा करे (–ऐसा कहा)। जैसे धन का अर्थी (पुरुष), राजा की सेवा करे। पहले तो राजा को जाने कि 'यह राजा है'; उसके लक्षण से, उसके पुण्य से, उसके परिवेश से, उसकी ऋद्धि से, यह राजा है – ऐसा जाने, **कि यह राजा है, फिर उसी का श्रद्धान करे...** पहले यह राजा है, उसे जाने। कौन (ऐसा जाने)? (कि) धन का अर्थी!

जो धन का अर्थी नहीं है, उसको कोई राजा की, सेठिया की या देव की दरकार नहीं है। जो लक्ष्मी का अर्थी है, वह प्रथम राजा को जाने। (यहाँ) राजा लिया है – कोई करोड़पति, अरबपति बनिये को–सेठ को नहीं लिया है। क्योंकि राजा के पास लक्ष्मी स्थायी होती है और राजा के पास पूर्व पुण्य के कारण से अरबों रुपये तो (ऐसे ही) आते हैं; इसलिए राजा लिया है।

(कहते हैं) **राजा को जाने कि यह राजा है, फिर उसी का श्रद्धान करे...** जानने के बाद श्रद्धान करे। (पहले) श्रद्धान करे (फिर) जाने – ऐसा नहीं (लिया है)। पहले उसके चिह्न से 'यह राजा है' ऐसा जाने, बाद में उसकी श्रद्धा करे **कि यह अवश्य राजा ही है...** उसके चिह्न से, उसकी ऋद्धि से, उसके परिवेश से, उसके पुण्य से, उसके बाहर के शरीर की ऋद्धि को देखकर – 'यह राजा है' – ऐसा जानकर, उसकी श्रद्धा (करे)। (उसकी श्रद्धा) जानकर करे। वचन 'पहले जानकर' यहाँ है। 'यह राजा ही है' – (ऐसा) निर्णय करे कि, यहाँ राजा ही है। *'राज्यते इति शोभते इति राजा।'*

इसकी सेवा करने से अवश्य धन की प्राप्ति होगी... (इस) राजा की सेवा करने से जरूर इसके पास से लक्ष्मी मिलेगी। (वैसे तो) लक्ष्मी पुण्य से मिलती है परन्तु यहाँ तो दृष्टान्त है। राजा ही लक्ष्मी दे सकता है न? वह तो पूर्व के पुण्य हो तो लक्ष्मी आती है। पुण्य से (भले) आती है परन्तु पैसा है, यह तो पाप है क्योंकि भगवान ने उसको परिग्रह में गिना है। पूर्व के पुण्य से मिले (जरूर) परन्तु (जो) चीज मिली है, वह पाप है – परिग्रह है। इस राजा के

पास परिग्रह बहुत है, यह जानकर (उसकी) सेवा करने से अवश्य धन की प्राप्ति होगी। उसकी सेवा करने से, उसके पास लक्ष्मी बहुत है, तो सेवा करने से मुझे लक्ष्मी मिलेगी।

फिर उसी का अनुचरण करे... पहले ज्ञान हुआ, श्रद्धा हुई फिर अनुचरण करे। दृष्टान्त में अभी पहले ज्ञान लिया है, (फिर) श्रद्धा (ली है), आहा...हा...! **सेवा करे, आज्ञा में रहे, उसे प्रसन्न करे;...** लक्ष्मी लेने के लिए राजा को प्रसन्न करे। यह तो दृष्टान्त है। आहा...हा...!

इसी प्रकार मोक्षार्थी.... जैसे (दृष्टान्त में) वह धन का अर्थी, राजा को जाने – श्रद्धा करे और सेवा करे (– ऐसा लिया था), ऐसे (सिद्धान्त में) मोक्षार्थी (लिया है)। यह शर्त! (मोक्षार्थी अर्थात्) जिसको अनन्त आनन्द का लाभ–ऐसा मोक्ष (चाहिए)। अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द की प्राप्ति का नाम मोक्ष। इस अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति का जो अर्थी है, (वह मोक्षार्थी है)। संसार का अर्थी – दुःख का अर्थी, वह नहीं (लिया)। (यहाँ तो) जिसे संसार के कोई भी काम की इच्छा नहीं (है), (परन्तु) एक मोक्ष की ही इच्छा है (ऐसा मोक्षार्थी लिया है)। मुझे परम अतीन्द्रिय आनन्द मिले – ऐसी (जिसे) आशा है – ऐसा मोक्षार्थी (होता है)। मोक्षार्थी(पने की) यह शर्त (है)। दुःख से मुक्त होना और आनन्द की प्राप्ति होना, (यह मोक्ष है)। दुःख से मुक्त होना, यह नास्ति से है और आनन्द की प्राप्ति, यह अस्ति से है; (इसलिए) जिसको अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति की इच्छा है, (वह मोक्षार्थी है)। यह शर्त! धर्म पानेवाले के लिए यह प्रथम शर्त (है) – मोक्षार्थी! आ...हा...हा...!

मोक्ष अर्थात् सर्वथा दुःख से मुक्त होना और पूर्ण आनन्द का लाभ होना, वह मोक्ष (है)। (ऐसे) **मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए,...** देखो ! आ...हा...हा... ! क्या शब्द लिया (है) ? **मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए...** ऐसा कुछ नहीं लिया कि देव-गुरु-शास्त्र को जानना या शास्त्र वाँचन करना या ऐसा सुनना – यह बात ली नहीं। यह सब व्यवहार नहीं लिया। पहले क्या करना ? इसमें (यह सब) नहीं लिया। सीधी बात करना (अर्थात्) पहले तो आत्मा को जानना चाहिए, ओ...हो...हा... !

अन्दर भगवान आत्मा कैसा है ? उसे मोक्षार्थी (को) पहले जानना चाहिए। नव तत्त्व को जानना या देव, गुरु, शास्त्र को जानना – ऐसी बात ली नहीं। पहले यह करना – ऐसा लिया है। पहले आत्मा का ही ज्ञान करना – ऐसे लिया है। समझ में आया ? दूसरी चीज उसके पास है, यह बात यहाँ नहीं (कही)। आत्मा क्या है ? बाहर में देव, गुरु को सुनुं, (उनकी) सेवा करूँ – तो (आत्मा) मिले, यह प्रश्न यहाँ नहीं है, क्योंकि ऐसी बात है ही नहीं। 'मैं भगवान की भक्ति करूँ, यात्रा करूँ, शास्त्र का वाँचन करूँ तो आत्मा मिलेगा' – यह बात है ही नहीं। पहले से यह शर्त ली है।

मुमुक्षु : तो फिर मन्दिरों की क्या जरूरत है ?

समाधान : मन्दिरों का भी प्रश्न यहाँ है नहीं; वह तो उसके कारण होता है। (उसे जानने का) शुभभाव हो तो उसकी बात यहाँ है नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई ! 17–18 (गाथा) हिन्दी में लेने को आपने कहा था !

(कोई ऐसा कहे कि) यह मन्दिर (बनाते हैं, वह क्या है?) वह तो (ऐसा) शुभभाव हो, तब बनने की चीज बनती है। (ऐसा) शुभभाव करे तो मन्दिर बनता है – ऐसा है नहीं। मन्दिर के एक-एक परमाणु की उस-उस काल में उसकी जो पर्याय होनेवाली है, (वह) उससे होती है। दूसरा मन्दिर करानेवाला (ऐसा) माने कि मेरे से मन्दिर होता है – (तो) यह बात पूर्ण – सोलह आना झूठी है। आहा...हा...!

जो (जीव) मोक्ष का कामी है (अर्थात्) अनन्त आनन्दरूपी मोक्ष (जिसे चाहिए, वह मोक्षार्थी है)। 'नियमसार' में लिया है कि मोक्ष क्या है? (कि) अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ, यह मोक्ष (है) – ऐसा 'नियमसार' में लिया है। क्या कहा?

मोक्ष का अर्थ क्या? (कि) अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ लेना, यह मोक्ष (है)। संसार में तो सब दुःख (है)। पैसा मिला, स्त्री–कुटुम्ब मिला, ये सब दुःख (है)। संसार (में) दुःख (ही है), आहा...हा...! उसकी बात तो यहाँ है नहीं परन्तु पहले देव, गुरु, शास्त्र की सेवा करना, (उनकी) देशना सुनना... दूसरी जगह (ऐसा) आये कि पहले देशना होती है परन्तु यहाँ यह बात ली नहीं, (क्योंकि) यह व्यवहार है। आहा...हा...!

यहाँ तो प्रथम में प्रथम (यह कहा कि) आत्मा को जानना चाहिए। आ...हा...हा...! निमित्त को जानना चाहिए, यह भी नहीं लिया; राग को जानना, यह भी नहीं लिया; उसकी एक समय की पर्याय को जानना, यह भी नहीं लिया। आहा...हा...! समझ में आया? सीधी आत्मद्रव्य को (जानने की) बात ली है। पहले

आत्मा को जानना! आत्मद्रव्य को जानना। गुण–गुणी के भेद को भी पहले नहीं (जानना)। आहा...हा...! पर्याय को भी नहीं, राग को तो नहीं (और) निमित्त को तो नहीं। आहा...हा...! पहले ही...! मोक्षार्थीपुरुष को पहले तो...! जैसे धन का अर्थी पहले राजा को जाने, वैसे आत्मार्थी (मोक्षार्थी) पहले आत्मा को जाने, आहा...हा...!

(पहले आत्मा को जाने) तो यह सब व्यवहार कहाँ जाएगा? (तो कहते हैं) उसके कारण से उस समय में होता है तो हो, उस पर उसका (मोक्षार्थी का) लक्ष्य नहीं (है)। बाहर की चीज तो उस समय क्रमबद्ध (पर्याय में) आनेवाली होती है तो होती है, उसका लक्ष्य कराया नहीं। आ...हा...हा...!

(भाई!) तो यह मन्दिर बनवाया, यह क्या है? (मन्दिर बनाने में) लाखों (रुपये) क्या करोड़–पाँच करोड़ (रुपये) डाल दे, तो क्या (हुआ)? वह तो परचीज है! उसमें तो राग की मन्दता – शुभभाव होता है। यह शुभभाव, धर्म नहीं (है) और शुभभाव धर्म का कारण भी नहीं (है)।

पहले यह शब्द लिया है। है अन्दर? मोक्षार्थी को...! जैसे धन का अर्थी राजा को जाने, जानने के बाद श्रद्धा करे, फिर अनुचरण करे; वैसे पहले मोक्षार्थी को... आ...हा...हा...! पहले आत्मा को जानना। आहा...हा...हा...! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और चैतन्यघन, विज्ञानघन प्रभु आत्मा एकरूप है। विज्ञानघन (है) – ऐसा भेद भी नहीं करना। एकरूप चैतन्य है, आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात है! पहले जिसको धर्मी कहना हो, अर्थात् धर्म

किसको करना हो, अर्थात् मोक्ष की भावना हो, उसको पहले में पहले आत्मा को जानना। नव तत्त्वों को जानना – ऐसा भी कहा नहीं। देव–गुरु–शास्त्र को पहले जानना, यह कहा नहीं। वह बात तो अन्तर में पहले साधारण आ जाती है, वह कोई चीज नहीं; उसको कोई आत्मा का ज्ञान हो जाता है – ऐसा नहीं (है)। आ...हा...हा...!

मुमुक्षु : सीधेसीधुं हाथ में आवी जाय?

पूज्य गुरुदेवश्री : सीधा आ जाता है, यह बात है। बात यह कहे है। दूसरा व्यवहार है, उससे प्राप्त होता ही नहीं; इसलिए तो पहले यह शब्द लिया है। व्यवहार आता है तो व्यवहार से आत्मा का ज्ञान होता है (ऐसा नहीं है)। लाख मन्दिर बनाया, पुस्तकें लाख-करोड़ बनायी। 'सोनगढ़' से 22 लाख (पुस्तक छपे) हैं। दूसरी जगह से (जयपुर से) आठ लाख (छपे) हैं। ये पुस्तकें बनायी तो आत्मा जानने में आता है – ऐसी बात नहीं ली है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहा...हा...!

पहले में पहले...! शर्त ये (है) – जो मोक्ष का अर्थी होता है तो – यह शर्त! राग का अर्थी हो, पुण्य का अर्थी हो, मान का अर्थी हो – वह तो धर्म की शुरुआत में भी आता नहीं, वह धर्म पाने के योग्य नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? लक्ष्मी का अर्थी हो, इज्जत का अर्थी हो, बड़प्पन का अर्थी हो (अर्थात्) दूसरे से ज्यादा हमको बड़प्पन मिलेगा – यह कोई शर्त यहाँ है नहीं – यह सब संसार है, आहा...हा...!

मोक्षार्थी को (अर्थात्) जिसको आत्मा के अनन्त आनन्द का

लाभ लेना है, ऐसी प्रयोजनभूत चीज को जिसे लेना हो, उसको पहले... पहले तो राजा को (जीवराज को) जानना। इस शब्द में बहुत गम्भीरता है! पहले में पहले भगवान आत्मा को जान! – ऐसे लिया है। समकित बाद में। जानने के बाद श्रद्धा (होती है)। जो चीज जानने में आयी नहीं, उसकी क्या श्रद्धा करना? गधे का सींग, खरगोश का सींग है नहीं तो जानने में आता नहीं, तो प्रतीति किसकी? वैसे पहले आत्मा क्या है? (यह) उसके जानने में आता नहीं तो प्रतीति किसकी? आहा...हा...!

पहले में पहले आत्मा को जानना चाहिए – शब्द ऐसा लिया है। पहले में पहले आत्मा को जानना चाहिए, आहा...हा...! संसार की सब जिज्ञासा, संसार का सब प्रयोजन का भाव छोड़कर (आत्मा को जानना), आहा...हा...! मैंने इतनी लक्ष्मी दी तो उससे मुझे कुछ धर्म होगा, मैं समकित सन्मुख हो जाऊँगा, यह बात है नहीं। मन्दिर में 25 लाख खर्च किये तो हम कुछ धर्म की सन्मुख होंगे, यह बात है नहीं। कठिन बात है भगवान!

मुमुक्षु : यह पहले क्यों नहीं कहा आपने?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें पहले आता ही नहीं, इसलिए कहा। उससे आत्मा का ज्ञान होता नहीं, इसलिए यह (आत्मा को जानने का पहले) कहा है। आहा...हा...हा...!

पहले शुभ(भाव) करो – दया, दान, व्रत–शुभ करो तो शुद्ध/धर्म होगा – ऐसी बात है नहीं। पहले राग की मन्दता का (भाव) – दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, दान आदि विशेष करो तो आगे बढ़ेंगे, यह बात यहाँ है नहीं। यहाँ तो सीधा भगवान आत्मा...!

पूर्णानन्द का नाथ! (है, उसको पहले जानना)। (जो) मोक्ष का अर्थी है, उसको पहले में पहले सीधा आत्मा को जानना।

आत्मा का दर्शन, ज्ञान, चारित्र – ऐसा भेद को जानना, ऐसा भी कहा नहीं। सोलहवीं गाथा में कहा है, उसका अर्थ यहाँ है। सोलहवीं गाथा में कहा था – **दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं**। साधु को, मुनिराज को हमेशा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का सेवन करना – ऐसा सोलहवीं गाथा में पहले पद में कहा। बाद में कहा – वह तीनों आत्मा है, तीन भेद नहीं। आहा...हा...! **णिच्छयदो अप्पाणं** – वही प्रयोजन यहाँ 17-18 गाथा में सिद्ध किया है। एक आत्मा...! आ...हा...हा...! पूर्णानन्द का नाथ, शुद्ध चिद्बिम्ब, ध्रुव, सामान्य, एक अतीन्द्रिय प्रभु की अनन्त शक्तियों का पिण्ड, ऐसा आत्मा...! ऐसा गुण का पिण्ड – ऐसा भी नहीं। यह तो समझने में (भेद) आता है। सीधा आत्मा को जानना...! आ...हा...हा...! गजब बात है, भाई!

सामान्य मनुष्य को तो (ऐसा लगे कि!) पहले यह करें, यह करें, यह करें... बाद में यह मिलेगा – ऐसा कुछ है नहीं।

मुमुक्षु : जैसे गाँव बीच में आता है, वैसे यह भी बीच में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आये, आये... (लेकिन) उसको छोड़ना। वह तो पहले कहा न? दोपहर को कहा था – जहाँ जाना है, वह लक्ष्य में (रहता) है (और) बीच में नगर आते हैं, उसको छोड़ देता है। यहाँ (तो) बीच की बात ही नहीं, छोड़ (देते) हैं, वह बात ही नहीं। जिस नगर में जाना है और बीच में छोड़ना है, वह भी बात

यहाँ नहीं। आ...हा...हा...! पर को छोड़ देना, यह भी व्यवहार है; राग को छोड़ना, वह भी व्यवहार है। राग का नाश करना वह भी नाम(मात्र) कथन है। आत्मा (के आश्रय से) राग का नाश करना, यह भी नाम(मात्र) कथन है। परमार्थ से आत्मा, राग का नाश कर्ता है नहीं। आत्मा तो आनन्दस्वरूप में (स्थिर) होता है तो राग की उत्पत्ति होती नहीं, तो राग का नाश किया – ऐसा नाममात्र कथन से कहने में आया है। आहा...हा...! यह 34 वीं गाथा में आया है।

यहाँ कहते हैं, **(मोक्षार्थी) पुरुष को पहले...** 'पुरुष' को (अर्थात्) आत्मा को। 'मोक्षार्थी पुरुष' अर्थात् 'आदमी' ही – ऐसा कुछ नहीं। 'मोक्षार्थी पुरुष' अर्थात् आत्मा। (चाहे तो) स्त्री का आत्मा हो (या) नपुंसक का आत्मा हो। नरक में नीचे जो नारकी हैं (वहाँ) तो अकेले नपुंसक ही हैं। मांस, दारू–शराब (जो) पीते हैं, उन सबका देह छोड़कर (रहने का) स्थान नरक है। कोई माने या न माने – इससे कोई वस्तु(स्थिति) पलट नहीं जाती। (कोई ऐसा कहे कि) 'बस! अभी यह करो, फिर कुछ नहीं है।' 'कुछ है नहीं' (कहता है लेकिन वहाँ) तेरा दुःख है, मरकर दुःख (भोगने को) नरक में जायेगा। माँस आदि (खाकर) नरक में जायेगा यह बात तो यहाँ कही नहीं, वैसे ही पुण्य करके स्वर्ग में जायेगा, यह बात भी यहाँ कही नहीं। यहाँ तो जिसको आत्मा के मोक्ष की इच्छा है (उसकी बात है), आहा...हा...!

गृहस्थाश्रम में हो, बालक हो,... इसमें 'आबाल–गोपाल' आयेगा! आयेगा इसमें। 'आबाल–गोपाल' (अर्थात्) बालक से लेकर वृद्ध सबको पहले में पहले करने के योग्य हो तो... मोक्षार्थी

जीव को पहले आत्मा जानना। आत्मा की पर्याय को जानना, यह भी नहीं कहा; व्यवहार जानने को भी नहीं कहा; निमित्त को जानो यह भी नहीं कहा! आहा...हा...! उसमें है या नहीं? हिन्दी तो सरल भाषा है, बहुत सरल है! (हमको) ऐसी कोई आप लोगों की हिन्दी आती नहीं।

मुमुक्षु : गुजराती भी सरल है, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा...हा...! पहले तो आत्मा को जानना। हिन्दी में पहले यह आया है! आहा...हा...! (मन्दिर में) पैसे खर्च किये, इसलिए धर्म होगा, नजदीक होगा नजदीक! ऐसा नहीं है। लाख क्या करोड़ (रुपये) डाले नहीं, उसमें कुछ राग की मन्दता हो तो पुण्य है, यह बात यहाँ है नहीं। यहाँ तो 'मोक्षार्थी'...! (बस, उसकी ही बात है)। आहा...हा...!

'श्रीमद्' में आता है ना? मात्र मोक्ष का काम है। 'मात्र मोक्ष अभिलाष'! है, (ऐसा) शब्द है। 'आत्मसिद्धि' में (आता है)। 'मात्र मोक्ष अभिलाष'! 'मात्र' मोक्ष अभिलाष!! 'मात्र' (अर्थात्) आत्मा के सिवा कोई चीज की अभिलाषा नहीं। एक ही मोक्ष! मेरी आनन्द की दशा! मेरे अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण दशा मुझे चाहिए! इसके सिवा कोई चाहना है नहीं – ऐसी मोक्ष की अभिलाषा है, उस जीव को पहले में पहले **आत्मा को जानना चाहिए...** आ...हा...हा...! नव तत्त्व को भी जानना कहा नहीं, भगवान अरहन्त को जानना (या) पञ्च परमेष्ठी को जानना, यह भी कहा नहीं, क्योंकि वह तो अनन्त बार जाना है और अनन्त बार व्यवहार आ गया है। यह आया नहीं – प्रथम आत्मा क्या चीज है? – वह आया नहीं। आहा...हा...!

पहले तो आत्मा को जानना,... (इसमें) बहुत गम्भीरता भरी है! बहुत गम्भीरता...! एक भगवान पूर्णानन्द प्रभु! एकरूप! दोरूप भी नहीं (अर्थात्) गुणी-आत्मा और ज्ञान–दर्शन गुण – ऐसा भेद भी नहीं। आहा...हा...! सीधा आत्मा को जानना। पञ्चम काल के सन्त, पञ्चम काल के श्रोता को यह बात कहते हैं! कोई ऐसा कहे कि 'ऐसी बात तो चौथे काल में चले!' (तो) यह बात क्या है? (एक) हजार वर्ष पहले (अमृतचन्द्राचार्य) मुनि हुए, दो हजार वर्ष पहले 'कुन्दकुन्दाचार्य' हुए वह भी पञ्चम काल में! तो पञ्चम काल के सन्त, पञ्चम काल के श्रोता को पहले यहाँ से बात करते हैं! समझ में आया? (ऐसा नहीं कहा है कि) 'पहले तुम ऐसा करो, पहले ऐसा करो, बाद में ऐसा करो और दान करो, (पहले राग की) मन्दता करो, बाद में यह होगा!' (यहाँ तो) पञ्चम काल के सन्त, पञ्चम काल के श्रोता को (पहले में पहले आत्मा को जानना – ऐसा कहते हैं!)। (महावीर) भगवान के (निर्वाण के 600) वर्ष बाद 'कुन्दकुन्दाचार्य' हुए, बाद में (एक) हजार वर्ष के बाद 'अमृतचन्द्राचार्य' हुए। आहा...हा...! 'कुन्दकुन्दाचार्य' तो छह सौ साल (बाद) गये (थे), अभी से दो हजार वर्ष पहले गये थे लेकिन भगवान के (निर्वाण) बाद छह सौ साल (बाद गये)। यहाँ से दो हजार वर्ष पहले। यहाँ से एक हजार वर्ष पहले 'अमृतचन्द्राचार्य' (हुए)। दोनों ने बात यह कही है! सब बात छोड़कर...! आ...हा...हा...! 'भगवान की पूजा करो, हमेशा सेवा करो तो तुझे लाभ होगा!' (ऐसी) कोई बात है नहीं। आहा...हा...! (कोई ऐसा कहे कि) 'पहले तुम सुनाओ कि

आत्मा क्या है? – बाद में हम जान सकते हैं न?' यह बात भी यहाँ है नहीं। समझ में आया?

श्रोता : बहुत कठिन पड़े!

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत कठिन पड़े? दुनिया में कुछ कठिन पड़ता नहीं। देश को छोड़कर, माँ–बाप, कुटुम्ब, रिश्तेदार आदि को (छोड़कर) परदेश में भटकता है, वह कठिन पड़ता नहीं! कुटुम्ब को वहाँ छोड़कर यहाँ भटकता है! कितने हजारों मील दूर (यहाँ भटकता है)! यह बात इसको कभी रुचि ही नहीं। अन्तर में उसकी दरकार (कभी) की ही नहीं। जिसकी दरकार करनी चाहिए उसकी दरकार की नहीं। जिसकी जरूरत नहीं, उसकी दरकार सारा दिन की – धन्धा-व्यापार, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धन, ब्याज पैदा किया, इतने पैसे हुए! आहा...हा...! करोड़ों रुपये का मन्दिर बनाया, इसलिए धर्म से नजदीक होगा और सम्यग्दर्शन पाने के योग्य होगा – ऐसी बात यहाँ है नहीं।

श्रोता : ऐसा उपदेश पहले दिया होता तो यह मन्दिर बनवाते नहीं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बनवाता है? वह तो शुभभाव हो (और) बनने के योग्य है, उस काल में बनेगा। इस शुभभाव से मन्दिर बनेगा, यह बात है नहीं। मन्दिर तो परमाणु की रचना है, आत्मा को बिल्कुल लाभ नहीं। वह परमाणु–रजकण जो हैं, (वह) अनन्त परमाणु का पिण्ड (है)। जैसे यह अंगुली है, वह अनन्त परमाणु का पिण्ड है। यह (कोई) एक चीज नहीं है, यह एक चीज नहीं है, यह तो अनन्त रजकण का पिण्ड है। उसको

शास्त्रभाषा में 'स्कन्ध' कहते हैं, 'स्कन्ध'! (एक से) अधिक परमाणु मिले, उसको शास्त्र में 'स्कन्ध' कहा है, तो यह स्कन्ध है, एक चीज नहीं। उसका टुकड़ा करते... करते... करते... आखिर का छोटे में छोटा पॉइन्ट रहे उसको 'परमाणु' कहते हैं। उस परमाणु में भी उस समय में उसकी अपनी अवस्था होने का काल है तो परमाणु की अवस्था होती है; दूसरे परमाणु के कारण से अवस्था होती है, यह (बात) भी नहीं (है)। तो दूसरे आदमी से मन्दिर होता है, यह (बात) भी नहीं (है)। कठिन काम, भाई! ऐसी बात है, प्रभु! आहा...हा...!

श्रोता : सामने दिखता है तो भी नहीं?

समाधान : जो नहीं दिखता, वह यह है! देखा नहीं, वह यह है और बाकी सब देखा है! बाकी सब बाहर में धूल देखी है! राजा अनन्त बार हुआ है, अरबों की महीने की कमाई (हो) – ऐसा राजा अनन्त बार हुआ है! और सौ बार मांगे और एक कवल (ग्रास) मिले – ऐसा भिखारी अनन्त बार हुआ है! और करोड़ों रुपये का मन्दिर भी अनन्त बार बनाया है, पूर्व में अनन्त बार बनाया है! वह कोई चीज नहीं। आहा...हा...! गजब बात है, भाई! हिन्दी में आया उसमें (भी) पहले यह आया!

'प्रथम में प्रथम आत्मा को जानना चाहिए' – यह शब्द लिया है। संवर, निर्जरा को जानना या मोक्षार्थी को मोक्ष जानना – ऐसे पहले नहीं लिया। क्या कहा? मोक्षार्थी को मोक्ष को जानना – ऐसे नहीं लिया। समझ में आया? मोक्षार्थी को आत्मा जानना – ऐसे लिया है। मोक्षार्थी को, मोक्ष क्या है? यह पहले जानने में लिया नहीं,

क्योंकि मोक्ष है, यह पर्याय है। मोक्ष पर्याय है, सिद्ध की पर्याय है। मोक्षार्थी को – मोक्ष की पर्याय के प्रयोजनवान को, मोक्ष की पर्याय जानना – ऐसा नहीं कहा। आहा...हा...! उसे संवर, निर्जरा को पहले जानना, यह भी नहीं कहा। आहा...हा...! ऐसी बात है, प्रभु! उसमें यह परदेश–अनार्य देश! उसमें ऐसी बातें!! बात तो ऐसी है, प्रभु! अन्तर की दरकार कभी की ही नहीं। चार गति में भटकते -भटकते नरक और निगोद के अनन्त भव किये तो भी आत्मा का कुछ (कल्याण) हुआ नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, पहले में पहले **आत्मा को जानना चाहिए...** ऐसे लिया है।

श्रोता : तैयार शिष्य को लिया है!

पूज्य गुरुदेवश्री : जो पात्र जीव है, जो मोक्ष का अर्थी है, उसको लिया है। जो कुछ पुण्य का अर्थी, विषय का अर्थी, मान का अर्थी, इज्जत का अर्थी, धूल का अर्थी (अर्थात्) यह पैसे –करोड़–दो करोड़ होते हैं, उसका अर्थी (हो), यह बात यहाँ ली नहीं, वह योग्य है ही नहीं! आ...हा...हा...! मोक्ष का अर्थी...! मोक्ष के अर्थी को मोक्ष जानना – ऐसे भी लिया नहीं, आहा...हा...! है न अन्दर देखो! **मोक्षार्थी पुरुष को पहले...** ऐसे शब्द पड़े हैं। मोक्षार्थी को पहले मोक्ष को जानना – ऐसे यहाँ पहले लिया नहीं; तो (फिर) पुण्य करना, यह करना, उससे आत्मा (प्राप्त) होता है – यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। भगवान आत्मा का ज्ञान किसी भी पर की अपेक्षा रखे बिना होता है। राग की इतनी मन्दता की और बाद में आत्मा का ज्ञान होता है – ऐसी अपेक्षा आत्मा को जानने में है नहीं। आहा...हा...! गजब बात है!

सेठिया हो तो लाख, दो लाख, पाँच लाख, पचीस लाख खर्च करे तो मानो (क्या कर दिया!) दूसरे लोग उसे 'धर्म धुरन्धर' का पद दें! 'धर्म धुरन्धर'! यहाँ तो ध्येय आत्मा जो है, आहा...हा...! पहले में पहले...! गजब बात है! मोक्षार्थी को पहले मोक्ष जानना, यह भी नहीं लिया। तब फिर संवर, निर्जरा, पुण्य को (जानना) और मन्दिर बनाना, पहले यह बनवाना और बाद में आत्मा को जानना, यह बात तो ली ही नहीं। आहा...हा...! सीधा मार्ग यही है! जिसे (धर्म करना हो, उसे) सीधा इस आत्मा को जानना! सीधा...! इसको जानने में पर की कोई अपेक्षा है नहीं; इसलिए भगवान के यह वचन है! (और) मुनिराज, जगत के पास यह प्रसिद्ध करते हैं! दुनिया को रुचे न रुचे, समाज साथ रहे न रहे, (नग्न मुनि को किसी का बन्धन नहीं)। 'नागा बादशाह से आधा'! उनको कोई परवाह नहीं कि यह बात किसी को नहीं रुचे और विरोध करेगा (तो)? (वह) उसके पास रहा! विरोध करनेवाला कोई है नहीं, आहा...हा...!

मोक्षार्थी को...! गजब बात कही है न! आ...हा...हा...! मोक्ष के अर्थी को मोक्ष जानना – ऐसे नहीं कहा क्योंकि मोक्ष है, वह पर्याय है; पर्याय है वह भेष है; पर्याय है, यह आत्मा का एक भेष है – 'समयसार' में आया है। संवर, निर्जरा भी एक भेष है (और) मोक्ष भी एक भेष है; वस्तु नहीं। यह तो पर्याय का एक भेष है, आहा...हा...! परन्तु जो एक (मात्र) मोक्ष की पर्याय चाहता है, उसको सीधा... (आत्मा को जानना)। आहा...हा...! पर की अपेक्षा छोड़कर (अर्थात्) ऐसा करूँ तो ऐसा मिलेगा – ऐसी अपेक्षा छोड़कर (सीधा आत्मा को जानना)।

तीन लोक का नाथ जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में यह आया! उसे सन्त...! पंचम काल के सन्त! सीधे भगवान के पास गये थे, वहाँ से आकर 'आढ़तिया' होकर यह बात करते हैं! 'भगवान ऐसा कहते हैं! वह हम कहते हैं!' ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

श्रोता : देशना सुनने से होता है न?

समाधान : देशना सुनने की यहाँ गिनती नहीं है! (क्योंकि) देशना अनन्त बार सुनी और अन्दर गया नहीं। देशना अनन्त बार सुनी है!

श्रोता : यह देशना अलग प्रकार की है!

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग प्रकार की है! देशना आती अवश्य है परन्तु देशना आयी; इसलिए प्राप्त हो जाये – ऐसा नहीं; इसलिए यह शब्द लिये हैं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आज तो तेरहवाँ दिन हुआ! अब इतना सूक्ष्म आया! आहा...! उसे क्रमबद्ध होगा, इसलिए आत्मा को जानना – ऐसे शब्द भी लिये नहीं। क्रमबद्ध होनेवाला है, इसलिए नहीं (परन्तु) आत्मा को जान, उसमें वह क्रमबद्ध है, वह बात आ जायेगी! आहा...हा...! क्योंकि क्रमबद्ध में अकर्तापना बताया है। आत्मा, राग का और पर्याय का अकर्ता है, सीधा आत्मा आत्मा का (कर्ता) है, तो सीधी आत्मा की बात ली है, आहा...हा...! वहाँ तो अकर्ता बताया है न? क्रमबद्ध में तो अकर्ता बताया है। पर्याय का भी अकर्ता! तो वह बात यहाँ ली नहीं। आ...हा...हा...! यहाँ तो पर्याय में सीधा आत्मा को जानना... जानने में आता है पर्याय में, परन्तु पर्याय में जानना – आत्मा! पर्याय (में) पर्याय को जानना – ऐसा भी कहा नहीं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

सारी दुनिया को जानते हैं! (हम तो) बहुत घूमे हैं, काठियावाड़ में... हिन्दी (भाषी प्रान्त में) तो कलकत्ता, जयपुर, दिल्ली सब जगह जाकर आये हैं। सब जगह व्याख्यान दिये हैं। बड़े-बड़े शहर, अहमदाबाद आदि सब जगह गये हैं। बापू! यह मार्ग कोई अलग है! आहा...हा...!

अभी (तो) ऐसी बात आने से उसे ऐसा लगे कि, 'यह बात तो बहुत कठिन है, इसलिए कुछ दूसरा चाहिए।' – तो कहते हैं कि वह आत्मा को प्राप्त करने के लिये योग्य नहीं है। आहा...हा...!

श्रोता : बात बहुत सूक्ष्म है, थोड़ी स्थूल नहीं हो सकती?

समाधान : सूक्ष्म कहाँ (है)? उसके स्वयं के घर की (बात है)! उसे सूक्ष्म कहना या स्थूल कहना? उसके घर की बात है, घर के अन्दर है। आत्मा घर के अन्दर महा प्रभु पड़ा है! आहा...हा...! एक घण्टा पूजा और भक्ति कर ली, इसलिए कल्याण हो जायेगा (यदि ऐसा मानता है तो) धूल में भी नहीं होगा!! (किसी को) पूछा था कि, 'कुछ करते हो?' (तो कहा कि) 'हम एक घण्टा भगवान की पूजा करते हैं!' उस एक घण्टे (पूजा करने से) कुछ होनेवाला नहीं – ऐसा कहते हैं। उसमें कुछ गति बदल जाये – ऐसा है नहीं। आ...हा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि पहले में पहले... नाथ! आत्मराजा! (दृष्टान्त में) जैसे सीधा राजा को जाने – ऐसा कहा। उसमें ऐसा नहीं कहा कि 'बनिये को जाने या ब्राह्मण को जाने या अमुक को जाने!' (बल्कि सीधा) राजा को जाने! 'राज्यते इति शोभते इति राजा'! आहा...हा...! उसके दीदार दिखे, शरीर में पुण्य दिखे,

उसके आभूषण, गहने, कपड़े देखकर लगे कि 'यह तो राजा है।' जैसे सीधा जिसने राजा को देखा हो, उस राजा को जानकर उसकी श्रद्धा करके, लक्ष्मी का अर्थी जो है... लोभी...! धन का अर्थी जो लोभी...! उसे राजा की सेवा करना – ऐसा कहा।

इसी प्रकार मोक्ष का अर्थी आत्मा! उसे आत्मराजा की सेवा करे! ऐसा कहा है।

श्रोता : हिन्दी में कहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हिन्दी में आया नहीं? आत्मा का सीधा सेवन करना – ऐसा कहा! ऐसा कहा नहीं कि कोई गरीब की सेवा करना, उसकी सेवा करे – ऐसा कहा नहीं। राजा के सिवा कोई सेठिया की सेवा करना – ऐसा भी यहाँ कहा नहीं, क्योंकि राजा के पास लक्ष्मी इतनी होती है... इस समय में अभी तो राजा साधारण हो गये हैं, (बाकी तो) पहले के जो राजा होते थे, उसकी करोड़ों की, अरबों की कमाई एक दिन की होती है! तो पैसा अर्थात् धूल (है) उसके पास! जैसे राजा को सीधा जानना – ऐसा कहा। कोई अमुक को जाने, ऐसा कहा नहीं, धन के अर्थी को राजा को जानना, ऐसा कहा, यह तो दृष्टान्त हुआ।

इस प्रकार मोक्षार्थी को...! आ...हा...हा...! गजब बात है, प्रभु! आ...हा...हा...! प्रथम में प्रथम **आत्मा को जानना चाहिए,...** शब्द यह पड़े हैं। कौन यह कहते हैं? मुनि! किसको कहते हैं? पंचम काल के श्रोता को! कोई ऐसा कहे कि 'ऐसी बात तो चौथे काल में चले अथवा ऐसी बात तो मुनि के लिये होती है! यह 'समयसार' मुनि के लिए हैं!' ऐसा कोई कहता है तो उसकी सब

बात उड़ा दी! (कोई कहे कि) 'समयसार' है, यह तो मुनि के लिये हैं! चौथे काल की बात है! यह (बात तो) पञ्चम काल के साधु पञ्चम काल के श्रोता को – मोक्ष अर्थी हो उसे, पञ्चम काल के मुनि, (पञ्चम काल के) श्रोता को ऐसा कहते हैं!! पहले आत्मा को जान! (लेकिन) 'प्रभु! इतनी सारी बात!' इतनी सारी कोई बात नहीं है! प्रभु अन्दर भगवान विराजता है! सत्‌चिदानन्द प्रभु! अनन्त परमेश्वर! अनन्त गुण का परमेश्वर! 38 वीं गाथा में कहा। 38 वीं गाथा में वह (बात आयी)। 38 गाथा...! 'अपने परमेश्वर को भूल गया!' अपने परमेश्वर... मुट्ठी में सोना... सबेरे दातून करते समय सोना निकालकर हाथ में (रखा था वह) भूल गया! कहाँ है! सोना कहाँ है? यह रहा! ओह! यह रहा! ऐसे आत्मा को अन्दर है परन्तु राग की एकताबुद्धि में भूल गया। दया, दान, पूजा, भक्ति का राग – इस राग की एकता में आत्मा को भूल गया। आहा...हा...! इस आत्मा को प्रथम जानना चाहिए – ऐसे कहा है। प्रथम जानना चाहिए। मोक्षार्थी को प्रथम आत्मा जानना चाहिए। आ...हा...हा...! पञ्चम काल में – ऐसे कठिन काल में प्रभु! पहले ऐसे करना, यह आप की बात बहुत कठिन पड़ती है। कठिन पड़े या नहीं पड़े, प्रभु! मार्ग तो यह है। कोई पर की अपेक्षा से आत्मा जानने में आये और अनुभव–सम्यग्दर्शन हो – ऐसी चीज है नहीं।

कोई पुण्य–दान किया, भक्ति किया, ऐसा किया, पचास लाख खर्च कर दिया, करोड़ खर्च कर दिये... बनिया इतने सारे तो खर्च करे नहीं... लेकिन कदाचित् करोड़ – दो करोड़ खर्च कर दिया तो उससे कुछ धर्म (हो जाये – ऐसा नहीं है)। और (कोई) ऐसा

लोभी हो (तो कहे कि) 'एक तखती हमारी लगा दो कि, हमने इस मकान (मन्दिर) में पाँच करोड़ दिये हैं! हमारी तखती लगाओ!' तखती लगाने में तस्दी लेते हैं!! तस्दी अर्थात् मेहनत। अपनी तखती लगाने में मेहनत करते हैं कि 'मैंने दस लाख, पचास लाख दिया है(तो) मेरा नाम उसमें लिखो!' उसमें तीन–चार नाम लिखे! फलाना के वती ये फलाना देनेवाला! सही फलाने की...!! सब देखा है न हमने तो! आहा...हा...! यहाँ यह बात नहीं है, नाथ!

श्रोता : पैसे दिये हैं तो लिखाते हैं, झूठा थोड़े ही लिखाते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : (लेकिन) आत्मा में क्या आया? बहुत मेहनत करे, जिसको दिये हो वह नहीं (लिखे) तो मित्रों को कहे कि, 'मेरा नाम लिखना! दो–पाँच आदमी को बात करो!' ऐसा मित्रों को कहे!! ऐसा कहकर तस्दी–मेहनत करे! तस्दी–मेहनत करके तखती लगावे। वह भटकने की तस्दी है। यहाँ तो अलग बात है। आहा...हा...!

यहाँ तो प्रभु, परमात्मा (यह फरमाते हैं)। 'कुन्दकुन्दाचार्य' कहे (– ऐसा) कहो या 'अमृतचन्द्राचार्य' कहे (– ऐसा) कहो या परमात्मा कहे (– ऐसा) कहो, सब एक ही है, क्योंकि आत्मा में पञ्च परमेष्ठी होने की योग्यता है। पञ्च परमेष्ठी (होने की) योग्यता भरी है, आत्मा में पञ्च परमेष्ठी अर्थात् अरहन्त सिद्ध होने की योग्यता पड़ी है, इसको जानो! आहा...हा...! है (पाठ में)? **और फिर उसी का श्रद्धान करना...** (पहले) जानना, फिर श्रद्धान करना (ऐसा कहते हैं)। जो जानने में आया नहीं, उसकी श्रद्धा कैसी? ज्ञान में वह चीज आयी नहीं और (कहे कि) उसकी

श्रद्धा करो! खरगोश के सींग नहीं है (और कहे कि) श्रद्धा करो! परन्तु जानने में आया नहीं (तो) श्रद्धा कैसे करे? सींग है नहीं (तो) जानने में आया नहीं, वैसे ही जो चीज जानने में आयी नहीं, उसकी श्रद्धा कैसी? समझ में आया? पहले जानना चाहिए **और फिर...** (श्रद्धा करनी), ऐसे लिया है।

और फिर उसी का... 'उसी का' अर्थात् आत्मा जाना उसका। उसी का अर्थात् आत्मा का। **श्रद्धान करना चाहिए...** उसकी श्रद्धा करनी चाहिए। आहा...हा...! जाननेवाले की श्रद्धा करना। जाननेवाला जानने में आया... जाननेवाला जानने में आया, इस जाननेवाले की श्रद्धा करना। जो जानने में आया है, उसकी श्रद्धा करना। जो चीज जानने में आयी नहीं, उसका कैसे विश्वास आये? किसका विश्वास करना? आहा...हा...!

यहाँ कहा कि **और फिर...** ऐसा जानकर फिर **उसी का श्रद्धान करना चाहिए...** फिर अर्थात् अकेला जानना (ऐसे) नहीं रहना, (बल्कि) जानकर श्रद्धा करना। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है – ऐसा जानकर उसकी श्रद्धा करना। जानना, फिर श्रद्धान करना। 'तत्त्वार्थसूत्र' में तो पहले सम्यग्दर्शन लिया है। 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान -चारित्राणि मोक्षमार्गः' वहाँ सम्यग्दर्शन की प्रधानता लेकर बाद में ज्ञान लिया है। यहाँ (यह कहते हैं कि) जो चीज जानने में नहीं आयी, उसकी श्रद्धा कैसे हो? ज्ञान में आत्मा क्या है? पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द (है) – ऐसे ज्ञान में आया नहीं, ज्ञान में जाना नहीं, ज्ञान में ज्ञेय हुआ नहीं, उसकी श्रद्धा कैसी? जिस ज्ञान में वह ज्ञेय आया नहीं, (अर्थात्) परज्ञेय छोड़कर स्वज्ञेय

आया नहीं और स्वज्ञेय (ज्ञान में) आये बिना उसकी श्रद्धा कैसी? किसकी श्रद्धा की? समझ में आया? आहा...!

फिर उसी का... 'फिर' शब्द लिया है न? जानना, फिर श्रद्धा करना, इस प्रकार 'फिर' (शब्द) लिया है। जानना... आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, शुद्धघन, विज्ञान पिण्ड – ऐसा अन्दर ज्ञान (हुआ), अनुभव हुआ, स्वज्ञेय का ज्ञान हुआ (और) परज्ञेय का ज्ञान छूट गया, तब फिर उसकी श्रद्धा करना। जो चीज ज्ञान में आयी है, उसकी श्रद्धा करना, आ...हा...हा...! हिन्दी भी सादी भाषा है। बहनों-बेटियों को भी समझ में आये ऐसा है। बात बहुत अच्छी आयी है! आहा...हा...!

आत्मा को जानना चाहिए, और फिर... 'फिर' में (ऐसा कहना है कि) जाना हुआ (है), उसकी श्रद्धा करना (कि) 'ज्ञायकस्वरूप आनन्दमूर्ति मैं हूँ।' यह मैं हूँ – यह भी विकल्प है। जानने में जो आया कि पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्य ऐसा है, उसकी प्रतीत करना – यह समकित है। जानने में आयी चीज का फिर श्रद्धान करना, उसका नाम समकित है – ऐसा यहाँ लिया है। ज्ञान पहले लिया है और श्रद्धा बाद में ली है। तत्त्वार्थसूत्र में सम्यग्दर्शन पहले लिया है और ज्ञान बाद में लिया है, क्योंकि वहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान में तत्त्वार्थ लेना है न! नव (तत्त्व) लेना है। वहाँ है एकवचन। नव तत्त्व का वचन एकवचन में है, बहुवचन नहीं। नव का एकवचन है। आत्मा को जानकर, आठ तत्त्व जानने में आये तो एकवचन हुआ; एक ही जानने में आया। यहाँ भी जानने में एक ही आया है। यहाँ भी एक ही आत्मा जानना **और फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिए...** क्या (श्रद्धान करना

चाहिए?) कि **यही आत्मा है,...** ज्ञान में आया है कि यही आत्मा है, आहा...हा...! प्रत्यक्ष हुआ है।

आत्मा में एक 'प्रकाश' नाम का गुण है, इस गुण के कारण आत्मा को जानते हैं तो प्रत्यक्ष हो जाता है। क्या कहा? पीछे (परिशिष्ट में) 47 शक्ति हैं न! 47 शक्ति! उसमें बारहवीं 'प्रकाशशक्ति' है। जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व और प्रकाश – बारहवीं (शक्ति) है। 47 शक्ति है (उसमें) बारहवीं शक्ति में ऐसा कहा है कि आत्मा में एक प्रकाश नाम का गुण है कि जो गुण स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हो जाता है। ध्यान के काल में प्रत्यक्ष होता है; परोक्ष रहता नहीं। सम्यग्दर्शन के (काल में) ज्ञान से प्रत्यक्ष हो जाता है। सम्यग्दर्शन में तो प्रतीति है। सम्यग्दर्शन कुछ जानता नहीं, यह तो प्रतीति है परन्तु पहले सारा आत्मा जानने में आया (कि) पूर्णानन्द का नाथ यह पूर्ण है – यह जानना, फिर उसकी श्रद्धा करना। ओ...हो...हो...! **करना चाहिए...** ऐसे लिया है। **फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिए...** किसको कहते हैं? पञ्चम काल के श्रोता को कहते हैं। श्रोता साधारण है और श्रोता को यह नहीं रुचेगा – ऐसी दरकार है नहीं।

तेरे में केवलज्ञान लेने की ताकत है। एक समय में केवलज्ञान लेने की ताकत है, तो आत्मा को जानने की ताकत की बात करना, यह कोई बड़ी बात नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...! वही आत्मा है। **श्रद्धान करना चाहिए कि 'यही आत्मा है'...** रागरहित (है), यह बात भी ली नहीं। यह नास्ति से बात है। आत्मा रागरहित है, पर्यायरहित है, भेदरहित है – ऐसा नहीं लिया। (यहाँ तो) सीधा

आत्मा जाना, उसकी फिर श्रद्धा करनी चाहिए कि **यही आत्मा है,...** (अर्थात्) यह आत्मा! (ऐसा) ज्ञान में जानने में आया। आहा...हा...! गुड़ का मीठापन ख्याल में आया (तो) यह गुड़ है! गुड़ है न गुड़? ख्याल में आया कि मीठापन है तो यह गुड़ है, वैसे ही आत्मा के आनन्द का अनुभव हुआ तो 'यह आत्मा है!' ऐसी श्रद्धा जानने के बाद होती है। जाने बिना श्रद्धा होती नहीं, आहा...हा...! ऐसी बात है! **यही आत्मा है,...** (ऐसी श्रद्धा होने के बाद) क्या करना? श्रद्धा में क्या होता है?

श्रद्धा में क्या होता है? कि – **उसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा...** उसका आचरण करने से कर्मों से छूटा जायेगा – ऐसा श्रद्धा में आता है। आचरण कोई शुभभाव करेगा – ऐसा नहीं। उसका आचरण करने से (छूटा जायेगा) – ऐसा श्रद्धा में आता है। समकित में ऐसा आता है कि उसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा। उसकी विशेष बात आयेगी...!

स्वानुभूतिरूप मार्ग

अहा! स्वानुभूतिमय यह मार्ग तो अनन्त आनन्द का देनेवाला मार्ग है। अनन्त आनन्द का मार्ग तो ऐसा अद्भुत ही होता है न! जगत को ऐसे मार्ग का लक्ष्य नहीं है, इसलिए बाहर में राग के सेवन को मार्ग मान रहा है। बापू! तेरा मार्ग राग में नहीं; तेरा मार्ग तो चैतन्य में समाहित है। चैतन्य में अगाध गम्भीर शान्ति और अनन्त गुण का भण्डार भरा है, उसमें देखते ही तुझे आनन्द का सागर दिखायी देगा। *(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी)*

प्रवचन – 2

'समयसार' 17-18 गाथा। यहाँ तक आया है। **मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए...** यह बात ली है, भाई ! चाहे जितने व्यवहार आदि करे परन्तु उससे आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। आत्मा की प्राप्ति पर से निरपेक्ष है; इसलिए यह सीधी बात ली है। कोई व्यवहार करे, यह करे, अमुक करे, पूजा-भक्ति करे, दया-दान पाले तो आत्मा का ज्ञान हो – ऐसा नहीं है; इसलिए सीधी बात यह ली है (कि) **मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए,...**

और फिर... यह शब्द आया है न? संस्कृत में **ततः** शब्द है। अनुभव में प्रतीति करना – ऐसा कहते हैं। आत्मा का अनुभव करके 'यह आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है' – ऐसी प्रतीति करना – यह श्रद्धा है। **फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिए...** ज्ञान बिना श्रद्धा नहीं होती। जो चीज जैसी है, वैसी ज्ञान में आये बिना उसकी श्रद्धा-प्रतीति होती नहीं; इसलिए सबसे पहला कर्तव्य हो तो यह है। आहा...हा...! व्यवहार की सब बात छोड़कर सीधी बात की है।

और फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिए कि 'यही आत्मा है, इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा...

आहा...हा...! यह आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है – ऐसी ज्ञान में प्रतीति हुई तो इस प्रतीति में ऐसा आया... प्रतीति में ऐसा आया कि इस आत्मा में आचरण करने से, आत्मा का आचरण करने से (अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा)। व्यवहार आचरण करने से (छूटा जायेगा – ऐसा नहीं कहा)। (व्यवहार आचरण बीच में) आता है परन्तु वह जानने योग्य है। आदरणीय तो (स्वयं का आत्मा है)। **इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा...** आहा...हा...!

चैतन्यस्वरूप आनन्दकन्द प्रभु, सकल निरावरण, पूर्ण अखण्ड, उसका ज्ञान करके श्रद्धा में ऐसा आया... श्रद्धा में ऐसा आया! कि इस आत्मा का आचरण करने से कर्मों से छूटा जा सकेगा; दूसरी कोई क्रियाकाण्ड से कर्म से छूटने की विधि नहीं है। आहा...हा...! है? **इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा...** (अर्थात्) यह आत्मा आनन्दस्वरूप (है), इस आनन्द (स्वरूप का) आचरण करना। सूक्ष्म बात है! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप आत्मा (है), इस आनन्द का आचरण करना, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करना, यह आत्मा का आचरण है। आहा..हा...! देह की जड़ आदि की क्रिया, यह आत्मा का आचरण है नहीं। अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का परिणाम, यह भी आत्मा का आचरण है नहीं। आहा...हा...! है? **उसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा और फिर...** (अर्थात्) ऐसी प्रतीति ज्ञान से हुई **और फिर उसी का अनुचरण करना चाहिए...**

यह आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसका अनुचरण

करके आचरण करना चाहिए। उसकी आवश्यक क्रिया (यह है कि) अन्तर में रहना – चिदानन्दस्वरूप में आचरण करना, वह चारित्र है। चारित्र कोई व्रत आदि परिणाम का नाम चारित्र नहीं है, आहा...हा...! कठिन बात आयी!

उसके **अनुभव के द्वारा उसमें लीन होना चाहिए;...** भगवान-आत्मा, शुद्ध चैतन्यघन को दृष्टि में लेकर उसका आचरण (करना चाहिए)। निमित्त का आचरण नहीं, राग का आचरण नहीं; त्रिकाली ज्ञायक का आचरण करने से कर्म से छूटेगा – ऐसी प्रतीति करके अन्तर में अनुभव में आचरण करना। आहा...हा...! ऐसी बात है! यह चारित्र! चारित्र कोई देह की क्रिया या व्रत, नियम, तप की क्रिया यह कोई चारित्र नहीं।

चारित्र तो ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप भगवान का आचरण (अर्थात्) अन्दर में एकाग्रता होना, (वह चारित्र है)। यह आचरण करने से ही कर्म से छूटेगा; इसके सिवाय दूसरे कोई आचरण से कर्म से नहीं छूटेगा। है? फिर **अनुभव के द्वारा उसमें लीन होना चाहिए;...** आहा...हा...! चैतन्य का सम्यक्ज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, फिर उसी में लीन होना चाहिए। अतीन्द्रिय आत्मा में लीन होना चाहिए – यह चारित्र है। आहा...हा...!

क्योंकि साध्य जो निष्कर्म अवस्थारूप... साध्य (अर्थात्)... यहाँ ध्येय की बात नहीं है। ध्येय तो आत्मा! ध्येय तो आत्मा है, परन्तु साध्य है, वह मोक्ष अवस्था है। दोनों में अन्तर है। समझ में आया? ध्येय (अर्थात्) यह तो पहले कहा कि आत्मा को जानना (फिर) श्रद्धान करना, यह ध्येय है। अब यहाँ (तो यह कहते हैं

कि) इस आत्मा का आचरण करने से साध्य जो मोक्षदशा (है वह) उससे प्राप्त होती है। आत्मा की मोक्षदशा, यह साध्य (है); ध्येय नहीं (ध्येय तो आत्मा है)। ध्येय और साध्य में पूर्व–पश्चिम जितना बड़ा अन्तर है।

ध्येय तो द्रव्यस्वभाव लेना और साध्य (अर्थात्) उसका आचरण करने से साध्य (जो) निष्कर्म अवस्था – सिद्ध अवस्था (प्रगट होती है) यह साध्य है। है? आहा...हा...! **साध्य जो निष्कर्म अवस्थारूप अभेद शुद्धस्वरूप...** आहा...हा...! आत्मा का पूर्ण अभेद(स्वरूप प्रगट) हो जाना, यह साध्य की अवस्था – मोक्ष की अवस्था है। है? **सिद्धि की इसी प्रकार उपपत्ति है,...** (अर्थात्) मुक्ति की इस प्रकार से उत्पत्ति है; दूसरे कोई प्रकार से मुक्ति की उत्पत्ति है नहीं। इस प्रकार पहले उसका निर्णय करना चाहिए। आहा...हा...!

मुक्ति अर्थात् सिद्धदशा – साध्य। ध्येय नहीं; ध्येय द्रव्य है परन्तु पर्याय में स्वरूप का आचरण करने से साध्य (जो) निष्कर्म अवस्था (है, वह) उससे प्राप्त होती है, आहा...हा...! भाषा बहुत संक्षिप्त, (है), किन्तु भाव बहुत गम्भीर है! आहा...हा...!

निष्कर्म अवस्थारूप अभेद शुद्धस्वरूप, उसकी सिद्धि की इसी प्रकार उपपत्ति है... इस प्रकार मुक्ति की उत्पत्ति है। मोक्ष की उत्पत्ति इस प्रकार से है। **अन्यथा अनुपपत्ति है**। अनेकान्त किया। आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञायकस्वरूप (है), उसको जानकर, श्रद्धा करके, उसका आचरण करना, वह निष्कर्म अवस्था (अर्थात्) सिद्धि का कारण है। निष्कर्म अवस्था(रूप) सिद्धि का यह कारण है; दूसरा कोई कारण है नहीं।

यह सब बाहर का करते हैं न? (तो कहते हैं कि) बाहर का हो, यह जानने योग्य है; अन्दर में आदरने योग्य नहीं। आहा...हा...! पञ्च कल्याणक महोत्सव में जो कोई क्रियाकाण्ड होता है, वह सब जानने योग्य है, आदरने योग्य नहीं। निष्कर्म अवस्था(रूप) सिद्धि की उत्पत्ति, आत्मा का आनन्द का आचरण करने से होती है; अन्यथा उसकी उत्पत्ति होती नहीं।

(इसी बात को विशेष समझते हैं –) विशेष समझते हैं। **जब आत्मा को, अनुभव में आने पर अनेक पर्यायरूप भेदभावों के साथ...** क्या कहते हैं? आत्मा में पर्याय में रागादि के अनेक प्रकार के भेद दिखते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि काम, क्रोध आदि के भेद जो दिखते हैं, इसके साथ **मिश्रितता होने पर...** (अर्थात्) पर्याय में विकार की मिश्रितता होने पर भी, आहा...हा...! **सर्व प्रकार से भेदज्ञान में प्रवीणता...** (अर्थात्) राग से भिन्न करना, वह भेदज्ञान (है), आहा...हा...! क्रियाकाण्ड का राग बीच में आता है परन्तु उससे भेद करना। आहा...हा...! है?

अनुभव में आने पर अनेक पर्यायरूप... (अर्थात्) रागादि अनुभव में आते हैं, अन्दर पर्याय में विकार आदि शुभाशुभभाव आते हैं। (उन) **भेदभावों के साथ मिश्रितता होने पर भी...** (अर्थात्) पर्याय में आनन्द का भी अनुभव और राग का भी अनुभव (है) – ऐसा मिश्रितपना अनुभव में आता है, फिर भी **सर्व प्रकार से भेदज्ञान में प्रवीणता से...** अन्दर में राग से भिन्न करने के भेदज्ञान में चतुराई (अर्थात्) प्रवीणता (से) (अर्थात्) 'विकल्प

मात्र पर है और मैं निर्विकल्प आनन्दस्वरूप हूँ' – ऐसे भेदज्ञान में प्रवीणता से। आ...हा...हा...! बात तो 17-18 गाथा (में) यह है।

– जो यह अनुभूति है सो ही मैं हूँ – (अर्थात्) मैं तो इस आनन्द का अनुभव करनेवाला, यह मैं हूँ। अनुभूति में साथ में जो राग आता है, यह मेरी चीज नहीं। उससे भिन्न अपना अनुभव करना – भेदज्ञान करना, यह आत्मा का आचरण है। राग की क्रिया बीच में आती है, उसका भेदज्ञान करना और आत्मा का अनुचरण करना, यह मुक्ति का उपाय है। आहा...हा...!

(– 'जो यह अनुभूति है) सो ही मैं हूँ' ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ... आहा...हा...! रागादि (मैं) नहीं। आनन्द और ज्ञानमूर्ति मैं आत्मा हूँ – ऐसा आत्मा का अनुभव (होना) और राग के भाव से भिन्नपना होने पर, अपने आत्मज्ञान की प्राप्ति (करता) हुआ। वहाँ आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई, राग की नहीं। राग का तो भेद(ज्ञान) करके आत्मा की प्राप्ति–उत्पत्ति हुई। आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात है! हिन्दी में तो आज दूसरा (दिन) है न! कल से तो गुजराती चलेगा। सेठ ने कहा था तो दो व्याख्यान (हिन्दी में) आये। हिन्दी वैसे बहुत कठिन नहीं है, थोड़ा ध्यान रखे तो समझ में आता है।

कहते हैं कि आत्मा की ज्ञान की पर्याय में रागादि की क्रिया मिश्रितपने दिखने पर, राग से भिन्न आत्मज्ञान करके, आत्मज्ञान का अनुचरण करना; बीच में राग आता है, उसका अनुचरण नहीं करना। आहा...हा...! ऐसी बात है!

ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ, इस आत्मा को जैसा

जाना है... (अर्थात्) आत्मा जैसा है (अर्थात्) शुद्ध चैतन्यघन, आनन्दकन्द, अनाकुल आनन्द का पूर – ऐसा आत्मा है, (ऐसा जाना)। राग के मिश्रितपने को छोड़कर ऐसे आत्मा का ज्ञान हुआ... **जैसा जाना है, वैसा ही है; इस प्रकार की प्रतीति...** जैसा आत्मा का ज्ञान हुआ उस प्रकार की प्रतीति तब (हुई)। आत्मा का ज्ञान हुआ, तब प्रतीति (हुई)। एकदम प्रतीति अपने आप (हो जाये) – ऐसा नहीं। जो चीज देखी नहीं, उसकी प्रतीति क्या? जो ख्याल में ही आया नहीं (और कोई कहे कि) विश्वास करो! (लेकिन) किसका करे? राग से भिन्न होकर आत्मा आनन्दस्वरूप है – ऐसे भेदज्ञान में आत्मा आया, उसका आचरण करना, आहा...हा...! है? **जैसा जाना है, वैसा ही है; इस प्रकार की प्रतीति...**

आहा...हा...! **प्रतीति जिसका लक्षण है – ऐसा श्रद्धान उदित होता है...** उसको समकित होता है। आहा...हा...! धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का प्रथम सोपान; आत्मा की पर्याय में जो रागादि हैं, उसका भेद करके, आत्मा का ज्ञान करके प्रतीति करना, तब सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, आ...हा...हा...! इतनी सारी शर्तें हैं! गाथा बहुत ऊँची है! **श्रद्धान उदित होता है...** देखो! भाषा ऐसी ली है। राग की–विकल्प की क्रिया से भिन्न आत्मा को जानकर, उसकी श्रद्धा प्रगट होती है। **उदित होता है** अर्थात् श्रद्धान प्रगट होता है।

(आगे कहते हैं), **तब समस्त अन्यभावों का भेद होने से...** (अर्थात्) तब सब रागादि–विकल्प का कोई भी प्रकार (हो); भगवान का स्मरण, भक्ति, पूजा, व्रत आदि सब का भेद

करना। वह कोई (भी) चीज अपने मोक्ष के कारण में है नहीं। आता है, होता है परन्तु उसका भेद करके... **अन्यभावों का भेद होने से...** देखो! आहा...हा...! सूक्ष्म है!

अन्यभावों का भेद होने से... (अर्थात्) पुण्य–पाप के विकल्प से आत्मा को भिन्न (करने से)। **अन्यभावों का भेद होने से निःशङ्क स्थिर होने में...** शङ्का बिना – निःसन्देह (रूप से) स्वरूप में स्थिर होने से। क्योंकि अन्यभाव का भेदज्ञान तो हुआ (और) अन्यभाव से भिन्न भगवान में स्थिर होने से, अन्तर में आत्मा के आनन्द में स्थिर होने से। **निःशङ्क स्थिर होने में समर्थ होने से...** क्या काम (हुआ)? राग से अपना आत्मा भिन्न देखा तो अपने में स्थिर होने का सामर्थ्य प्रगट हुआ। राग से –विकल्प से अपने को भिन्न जाना, तब आत्मा में स्थिर होने की ताकत प्रगट हुई।

जब तक राग को अपना मानते हैं, तब तक मिथ्यादृष्टि में अपने स्वरूप में स्थिर होने की शक्ति–सामर्थ्य प्रगट होती नहीं। आहा...हा...! मार्ग यह है! बाकी सब व्यवहार की अनेक बातें आये। निःशङ्क स्थिर होने से! (अर्थात्) राग से भिन्न भगवान देखा तो निःशङ्क आत्मा में स्थिर होने से। शङ्का नहीं है कि यह राग भी कुछ सहायता करेगा। राग–विकल्प आता है, वह मदद करेगा – ऐसी शङ्का छूट गयी। निःशङ्क स्थिर होने से!

अपने स्वरूप में – ज्ञायक भगवान चिदानन्द में निःशङ्क स्थिर होने में समर्थ होने से **आत्मा का आचरण उदय होता हुआ...** यह आत्मा का आचरण (उदय) हुआ, अर्थात् चारित्र हुआ।

आहा...हा... ! यह आत्मा का आचरण ! लोग सदाचरण कहते हैं, वह लौकिक नीति का सदाचरण है। यह निश्चयसदाचरण है। सदाचरण अर्थात् सत् आचरण। सत्य आत्मा – सत्चिदानन्द प्रभु ! उसको राग से भिन्न करने से अन्दर में स्थिर होने की ताकत प्रगट होती है। आहा...हा... ! ऐसी बात है ! सूक्ष्म बात है, भाई !

(इस प्रकार) **आत्मा का आचरण उदय होता हुआ आत्मा को साधता है**। वह आत्मा को साधता है। बाहर की क्रियाकाण्ड से आत्मा का कोई साधन होता है – ऐसा है नहीं। आहा...हा... !

ऐसे साध्य आत्मा की,... साध्य अर्थात् मुक्तिदशा ! मोक्ष – साध्य ! **ऐसे साध्य आत्मा की सिद्धि की इस प्रकार उपपत्ति है**। इस प्रकार से उसकी उत्पत्ति है। मोक्ष की दशा की इस प्रकार से उत्पत्ति है; दूसरे प्रकार से मोक्ष की उत्पत्ति है नहीं। आहा...हा... ! राग से भिन्न होकर, आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है – ऐसा ज्ञान होकर प्रतीति हुई कि इस आत्मा में आचरण करने से ही मैं कर्म से छूटूँगा। फिर आत्मा का अनुचरण करना, आत्मा का आचरण करना – आत्म-आचरण ! राग–दया, दान आदि आत्मा का आचरण नहीं। आहा...हा... ! ऐसी बात है ! **सिद्धि की इस प्रकार उपपत्ति है**। मोक्ष की पर्याय की उत्पत्ति इस विधि से होती है; दूसरी विधि है नहीं – यह अनेकान्त है। दूसरी विधि से भी हो और आत्मा की विधि से भी हो, उसको अनेकान्त कहते हैं – ऐसा नहीं; वह तो फूदड़ीवाद है।

अनेकान्त तो यह कहता है कि आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र(से) अनुकरण करने से – आत्मा का आचरण करने

से (मोक्ष की पर्याय की उत्पत्ति होती है, अन्य विधि से नहीं)। सदाचरण यह है। सत् ऐसा आत्मा। सत् अर्थात् त्रिकाल प्रभु! उसका आचरण करने से मुक्ति की उत्पत्ति होती है, अन्यथा उत्पत्ति होती नहीं। आहा...हा...! अब यह मुद्दे की बात आयी है, इसलिए थोड़ी उतावली से ले लिया। विशेष (बात) इसमें है।

श्रोता : आज हिन्दी में और कल गुजराती में!

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो, अब क्या होता है! पहले यह कहा कि आत्मा की सिद्धि की उत्पत्ति इस विधि से होती है। ऐसा न होने पर दूसरा आचरण करने से (अर्थात्) राग – दया, पूजा और भक्ति आदि का आचरण करने से मुक्ति होती है – ऐसा है नहीं। बीच में आता है – राग आदि आता है परन्तु उसका भेद करने से आत्मा का आचरण होता है। उसके साथ अभेदता रखकर आत्मा का आचरण होता है और उसको साथ में रखकर मुक्ति की प्राप्ति होती है – ऐसा है नहीं, आहा...हा...! समझ में आया?

परन्तु... (अर्थात्) ऐसी बात है तो भी, आहा...हा...! भगवान तो अन्दर विराजते हैं, उसका ज्ञान करने से और प्रतीति करने से और प्रतीति में भी इस आत्मा का आचरण करने से मुक्ति होती है – ऐसी प्रतीति आती है; फिर आत्मा का आचरण करना। दया, दान, व्रत आदि व्यवहार आचरण है, वह मुक्ति का कारण नहीं; वह बन्ध का कारण है। आहा...हा...! भजन, स्तुति आदि सब राग का कारण है। आहा....! समझ में आया? भगवान का भजन, भक्ति और भगवान का गुणगान करना, यह सब विकल्प हैं; उससे भेद करना, यह आत्मा का आचरण है। इन्हें साथ में रखकर

आत्मा का आचरण है – ऐसा है नहीं। आहा...हा...! अब यह बात थोड़ी समझने की सूक्ष्म आती है, सुनो!

ऐसा होने पर भी, ऐसा कहा ना? **परन्तु...** ऐसा है न? आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित आत्मा का आचरण हो तो मुक्ति की उत्पत्ति होती है – ऐसा है, **परन्तु...** ऐसा क्यों नहीं हुआ? अनादि काल से ऐसा क्यों नहीं हुआ? यह **परन्तु** कहकर कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा... आ...हा...हा...! ऐसा अनुभूति – आनन्द की अनुभूति(स्वरूप)! है? **ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान....** देखो! 'भगवान' (कहकर) बुलाया!! आहा...हा..! आत्मा को 'भगवान' कहकर बुलाया! (इसी ग्रन्थ की) 72 गाथा में भी 'भगवान' कहा है, बहुत जगह 'भगवान' कहा है! **ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा आबालगोपाल सबके अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी,...** आहा...हा...! सब खूबी यहाँ है जरा!

ऐसा आत्मा सब प्राणी को अपनी ज्ञानपर्याय में ऐसा आत्मा अनुभव में आता है। ध्यान रखना थोड़ा! **ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...** है? **आबालगोपाल...** आबाल, अर्थात् बालक से लेकर वृद्ध.... बालक से लेकर वृद्ध; सब आत्मा को उसकी पर्याय में यह आत्मा अनुभव में आता है! क्या कहा? अज्ञानी को भी उसकी ज्ञान की पर्याय में, पर्याय का स्व-परप्रकाशक स्वभाव होने से, (आत्मा अनुभव में आता है)। है ज्ञान की पर्याय! भले अज्ञानी की है, (यहाँ तो) सबकी बात है। बालक से लेकर वृद्ध

– सब जीव को ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा (अनुभव में आ रहा है)। **सबके अनुभव में सदा... 'सबके'** और **'सदा'** दो शब्द पड़े हैं। क्या कहा? आहा...हा...! ऐसा भगवान आत्मा आनन्द की अनुभूतिस्वरूप प्रभु, सबको – सब प्राणी को – सब आत्मा को सदा... आहा...हा...! है?

सबके... अनुभव में... सदा... स्वयं ही... 'स्वयं ही' अर्थात् यह आत्मा जो अनुभूतिस्वरूप है – ऐसा आत्मा... सब प्राणी को... पर्याय में... अनुभव में आता है। आहा...हा...! यह क्या कहा? सब प्राणी को ऐसा अनुभव आता है – ऐसा कहते हैं! (ज्ञान की पर्याय में स्व-पर प्रकाशक) शक्ति होने से पर्याय पर को तो जानती है परन्तु अज्ञानी की पर्याय भी (स्व को जानती है)। सबको (कहा इसमें) कोई बाकी नहीं (रहा), उसमें तो अभव्य भी आ गया! आहा...हा...! अभव्य मिथ्यादृष्टि एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय अथवा बालक से वृद्ध, सबको अपनी पर्याय में इस भगवान का अनुभव होता है। सबको... सदा... स्वयं – तीन शब्द पड़े हैं। आहा...हा...! यह मुद्दे की बात आयी! क्योंकि आत्मा की पर्याय का ऐसा स्वभाव है (अर्थात्) स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है।

ज्ञान की पर्याय में – अज्ञानी की पर्याय में भी, सब जीव को सदा... सदा (कहा)! उसकी ज्ञान की पर्याय सदा रहती है। सब जीव को ज्ञान की पर्याय सदा रहती है। इस पर्याय में समस्त जीव को सदा स्वयं आत्मा (अर्थात्) अपनी चीज जो है, वह ज्ञान की पर्याय में अनुभूति में आती है। भाई! क्या कहा?

श्रोता : अनुभूति शब्द अर्थात् द्रव्य या पर्याय?

समाधान : पर्याय में अनुभव में आता है किन्तु उसकी दृष्टि वहाँ नहीं है – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई ! पहला पैराग्राफ जल्दी लिया, उसका कारण यह था कि यह दूसरा (पैराग्राफ) एकदम समझ में आये।

श्रोता : अनुभूति का अर्थ यहाँ पर्याय लेना या द्रव्य लेना ?

समाधान : पर्याय... पर्याय में द्रव्य का अनुभव है। पर्याय में द्रव्य का अनुभव है ! क्योंकि ज्ञान की पर्याय है, तो ज्ञान की पर्याय का स्व–पर प्रकाशक स्वभाव है; इस कारण से सब जीव को पर्याय में द्रव्य का अनुभव है।

श्रोता : अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा... !

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा पर्याय में है !

श्रोता : अनुभूति त्रिकाल या वर्तमान ?

समाधान : त्रिकाल ! त्रिकाल जो है, वह उसकी पर्याय में (अनुभव में) आता है ! आहा...हा... ! अनुभूतिस्वरूप भगवान कहा न ? '**अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा**' ऐसे कहा न ? (अर्थात्) अनुभव में आनेवाला भगवान आत्मा ! आहा...हा... ! आज सूक्ष्म बात है, भाई ! यह पद एकदम ले लिया, उसका कारण (यह) था (कि) आज हिन्दी में पूरा होनेवाला है न ? आहा...हा... !

चैतन्य भगवान ! अनुभूतिस्वरूप भगवान यहाँ तो (कहा है)। अनुभूति भगवान को कहते हैं। परन्तु यह अनुभूतिस्वरूप भगवान पर्याय में जानने में आता है। है ? **आबालगोपाल सबके अनुभव में सदा...** अनुभूति(स्वरूप) अनुभव में सदा **स्वयं ही...** 'ही'

शब्द रखा है। अपनी पर्याय में अपना आत्मा ही जानने में आता है। आ...हा...हा...! धीरे से समझना! बापू! यह तो भगवान के घर की बात है! त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा की यह वाणी–दिव्यध्वनि है! दिव्यध्वनि में ऐसा आया। 'ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे।' भव्य प्राणी होता है, वह संशय का छेद कर देता है। कैसे? आहा...हा...! सब प्राणी को पर्याय में अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा, अनुभव में सदा (आता है)। यहाँ तो पर्याय में अनुभव में आता है (– ऐसा कहा है)! आ...हा...हा...! क्या कहा, समझ में आया?

सब प्राणी को – अज्ञानी को भी... आ...हा...हा...! कसाई जीव को भी, अभव्य जीव को भी... आ...हा...हा...! अनन्त संसारी आत्मा को भी... आहा...हा...! पर्याय की ताकत इतनी है कि ज्ञान की पर्याय में अनुभूतिस्वरूप भगवान सदा... सर्वदा... सर्व को... स्वयं... अनुभव में आता है। आहा...हा...! गाथा आपने लिखी है न! आहा...हा...! शान्ति से सुनने जैसी बात है, बापू!

भगवान आत्मा... अनुभूतिस्वरूप प्रभु अन्दर है, अनुभव में आने योग्य (है)। सदा सर्व जीव को स्वयं – जो आत्मा स्वयं है, वही पर्याय में अनुभव में आता है। आ...हा...हा...! **'स्वयं ही'** ऐसे कहा है। अकेला **'स्वयं'** शब्द नहीं लिया है। स्वयं ही– अकेला आत्मा ही पर्याय में जानने में आता है! आहा...हा...! **आने पर भी...** अब लेना है। पर्याय में आत्मा का अनुभव होने पर भी... आहा...हा...! उसकी नजर वहाँ गयी नहीं है, इसकी नजर वहाँ गयी नहीं है! नजर, पर्याय में – राग में फिरती है। समझ में आया? आहा...हा...! 17-18 गाथा अलौकिक है!! आहा...हा...!

लोग व्यापार करते हैं न? तब ऐसा कहते हैं कि रुपये में कितनी कमाई हुई? सत्रह आने, अठारह आने, सवाया या डेढ़ गुना? ऐसा कहते हैं न? हमारे यहाँ दुकान थी, वहाँ भी चलता था, बारह महीने में रुपये में अठारह आने पैदा हुए... बारह महीने में व्यापार में अठारह आने (पैदा) हुए। हमारे यहाँ भी ऐसा चलता था। यहाँ तो कुछ ज्यादा ही चलता है! यह तो वतन की बात है न! 'पालेज' तो गुजरात का गाँव है न! आहा...हा...!

श्रोता : यहाँ तो गाथा 31 और 32 कलश है!

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या आता है देखो! अभी तो चार दिन बाकी है न! आहा...हा...! 32 वीं गाथा नहीं ली है, 31 और 38 (गाथा) ली है।

यहाँ कहते हैं प्रभु! शान्ति से सुनने जैसा है, प्रभु! यह तो अलौकिक बात है! अन्यत्र कहीं सुनने मिले नहीं – ऐसी बात है! आहा...हा...! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव, मुनियों को समझते थे, वह मुनि अपनी वाणी से जगत को बताते हैं! सुन तो सही, प्रभु! तेरी पर्याय में इतनी ताकत है! तेरी वर्तमान ज्ञान की पर्याय भले अल्प है तो भी हम कहते हैं कि इतनी ताकत है कि उस पर्याय में द्रव्य ही जानने में आता है! आ...हा...हा...हा...! भाई! पर्याय में भगवान जानने में आता है! पुत्र–पुत्री, पैसा और राग (जानने में नहीं आता) – ऐसा कहते हैं! आहा...हा...!

ऐसा होने पर भी, ऐसा कहा न? **अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी...** ऐसे लिया न? आ...हा...हा...! उसकी दृष्टि उस ओर नहीं है। अनादि से दृष्टि, पर्याय ऊपर और राग ऊपर है। पर्याय

में सारा आत्मा जानने की ताकत होने पर भी, पर्याय में स्वयं अनुभव में आता है – ऐसा होने पर भी, उसका लक्ष्य स्वभाव ऊपर नहीं जाने से, उसका लक्ष्य एक समय की अवस्था अथवा राग पर जाने से अनुभव में आने पर भी, उसको अनुभव में आता नहीं। समझ में आया?

फिर से – आहा...! जोरदार बात है, प्रभु! कान में सुनने मिले, वह भी भाग्यशाली हो उसे मिले, ऐसा है। ऐसी यह बात है, यह कोई साधारण ऐसे–वैसे की बात नहीं है। यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा की दिव्यध्वनि में बात आयी, (उसके) सन्तों ने आगम रचे और दुनिया को समझाया। आहा...हा...! समझ में आया?

इस भगवान आत्मा की पर्याय में, अर्थात् ज्ञान की दशा में, ज्ञान की दशा का स्वभाव ऐसा है कि सारा अनुभूतिस्वरूप भगवान उसकी पर्याय में अनुभव में आता है। ऐसा आया न? देखो! 'अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा' यह तो पहले आत्मा को कहा। बाद में 'आबालगोपाल' (कहा)। आबालगोपाल अर्थात् बालक से वृद्ध – छोटे से बड़े – बालक, स्त्री, कन्या, वृद्ध – सब भगवान आत्मा हैं! अन्दर में तो आत्मा भगवान पूर्णानन्द है। सबको... आहा...हा...! 'सबके' ऐसा है न? 'आबालगोपाल' का अर्थ समझे? बालक से लेकर वृद्ध–समस्त जीव को! ओ...हो...हो...! **सबके अनुभव में सदा...** अनुभव में... सबको और सदा... आहा...हा...! भाई! यहाँ वजन दिया है।

सबको... सदा... स्वयं आत्मा... पर्याय में स्वयं आत्मा ही

जानने में आता है – ऐसा कहते हैं ! आहा...हा... ! ऐसा अभी तो सुना भी न हो ! आहा...हा... ! भगवान ! भगवान, भगवान को कहते हैं !! आहा...हा... ! प्रभु ! तेरी चीज तो अनुभूति–भगवानस्वरूप है न ! आहा...हा... ! लिखा है न अन्दर ? **अनुभूतिस्वरूप भगवान** कहा है ! किसे ? प्रत्येक को (कहा है)। प्रत्येक आत्मा अन्दर अनुभवस्वरूप भगवन आत्मा (है) ! आ...हा...हा... ! सब भगवान आत्मा (हैं) ! सब जीव को सदा स्वयं अनुभूति(स्वरूप) भगवान आत्मा, पर्याय में अनुभव में आता है। आहा...हा... ! भाई ! ऐसी बातें पैसे में मिले – ऐसा नहीं है।

श्रोता : नैरोबी के अहोभाग्य कि आप की वाणी सुनने मिली !

पूज्य गुरुदेवश्री : आ...हा...हा... ! बापू ! वीतराग त्रिलोक के नाथ सर्वज्ञदेव विराजते हैं, उनके पास से आयी हुई बात है। आहा...हा... ! भगवान, भगवान को कहते हैं ! भगवान, भगवान को कहते हैं – हे भगवान आत्मा ! आ...हा...हा... ! प्रभु ! तू तो अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा है न ! आ...हा...हा... ! तू राग और पुण्यरूप है ही नहीं न, नाथ ! आहा... ! तो देह की क्रिया, वाणी की क्रिया, विषय का संग, स्त्री का संग, शरीर का संग – यह चीज तो बहुत दूर रह गई ! वह तो तेरे में है ही नहीं। आहा...हा... ! तेरे में रागादि होने पर भी, राग से भिन्न भगवान, राग का ज्ञान करनेवाली पर्याय, राग को जानती है परन्तु पर्याय में अनुभूतिस्वरूप भगवान जानने में आता है। आ...हा...हा... ! समझ में आया ?

सब जीव को सारा भगवान अनुभूति प्रभु... सदा... उसकी पर्याय में अर्थात् वर्तमान दशा में स्वयं अनुभव में आता है।

आ...हा...हा...! ऐसा होने पर भी, (अर्थात्) वस्तु तो ऐसी है, आहा...हा...! फिर भी... आहा...हा...! है न? **अनादि बंध के वश,...** अनादि से राग के वश हो गया है। ऐसे देखे तो (अन्दर में देखे तो) भगवान अनुभव में आता है, परन्तु उस ओर लक्ष्य नहीं करके राग, पुण्य, दया–दान, काम–क्रोध के अनादि बन्ध के वश पड़ा हुआ; अबन्धस्वरूप अनुभव में आने पर भी उस पर दृष्टि नहीं (है) तो 'मैं राग हूँ' – ऐसा मानकर मिथ्यादृष्टि भटकते हैं। आहा...हा...! धीरे से समझना! थोड़ा कठिन पड़े तो रात को पूछना! आहा...हा...! एक पंक्ति में तो कितना भरा है!! आहा...हा...!

श्रोता : बिल्कुल प्रयोग की गाथा है, गुरुदेव!

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयोग करना! यही करना है! करना हो तो यही करना है, इसके बिना सब 'एक के बिना शून्य' है। आहा...हा...! बाहर की सब प्रवृत्ति होती हो... हो उसके कारण से, तेरे में तो उस समय में राग होता है परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि राग से भिन्न करके आत्मा का अनुभव करना। ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान, राग के काल में भी, पर्याय में अनुभव में आता है, क्योंकि पर्याय का स्वभाव ही ऐसा है। ज्ञान की पर्याय का – अवस्था का वर्तमान में स्वभाव ऐसा है कि त्रिकाली को अनुभव में लेती है – ऐसा स्वभाव ही है। आहा...हा...! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म पड़े... थोड़ा सूक्ष्म तो पड़े (किन्तु) समझने की बात यह है। मुद्दे की रकम तो यह है।

कोई आदमी कहे न कि 'ब्याज तो बहुत खाया लेकिन मुद्दे की रकम तो लाओ!' तो कहे, 'रकम है नहीं!' अरे...! तब तो

क्या हुआ? पहले तो बारह आना में (पैसे ब्याज पर) देते थे। हमारे वहाँ भी सेठ लोग थे, वे राजा को दो–दो लाख आठ आना के (ब्याज पर) देते थे। इन दिनों में बढ़ गया। मुझे तो दूसरी बात कहनी है। बीस साल तक ब्याज खाया, बाद में कहा कि 'मुद्दे की रकम लाओ!' सामनेवाला कहे 'मुद्दे की रकम है नहीं!' अरे...रे...! अकेला ब्याज खाकर क्या हुआ, मुद्दे की रकम तो समाप्त हो गई। आहा...हा...! ऐसे अनादि से दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम में रुकने से मुद्दे की रकम पड़ी रही। ब्याज खाया, रकम पड़ी रही! भाई! आहा...हा...! एक पंक्ति में तो बहुत भरा है।

यह अनुभूतिस्वरूप आत्मा आबालगोपाल सब जीव को (अनुभव में आ रहा है) – ऐसा परमात्मा कहते हैं! सबको... अनुभव में... सदा... स्वयं ही, (ऐसे) शब्द पड़े हैं। अकेला 'स्वयं' शब्द नहीं पड़ा है। स्वयं ही, उसकी ज्ञान की पर्याय में आत्मा ही आता है। आहा...हा...! सब आत्मा को पर्याय में स्वयं त्रिकाली अनुभूति(स्वरूप) भगवान ही जानने में आता है, परन्तु लक्ष्य उस तरफ नहीं। अनुभव में आने पर भी लक्ष्य उस तरफ नहीं (है), आ...हा...हा...! है?

अनादि बंध के वश... (अर्थात्) अनादि राग और पुण्य के वश से उनको देखने में रुक गया, उनको करने में रुक गया; भगवान अनुभूतिस्वरूप अनुभव में आने पर भी लक्ष्य उस तरफ नहीं होने से, राग का लक्ष्य होने से, राग का अनुभव होने से; जानने की चीज जानने में नहीं आयी, आहा...हा...! जिसकी पर्याय है... जिसकी पर्याय है, उसमें पर्यायवान जानने में आता है (किन्तु) उस

पर्याय ने उसको जानने में नहीं लिया। जानने में आता है, फिर भी जानने में नहीं लिया और जो जिसमें नहीं – ऐसे राग को जानने में रुक गया। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म है, प्रभु!

आहा...! 'भगवान' (कहकर) तो बुलाते हैं! आहा...हा...! मुनिवरों, 'भगवान आत्माओं' – ऐसा कहते हैं! तेरे (में) कपड़े, शरीर (इत्यादि) नहीं, तेरे में पुण्य-पाप राग (होता) है, वह भी तू नहीं। तुम तो भगवान आत्मा हो न नाथ! अनुभूति में आने योग्य है न! अरे...! पर्याय में अनुभव तो आपको होता है न! आ...हा...हा...!

श्रोता : जमी....!

पूज्य गुरुदेवश्री : जमी...? पर्याय में अनुभूति होती है न! आहा...हा...! अनुभूतिस्वरूप भगवान तो है ही! अनुभूतिस्वरूप भगवान तो है ही परन्तु तेरी पर्याय में अनुभूतिस्वरूप भगवान (अनुभव में) आने पर भी, तेरा लक्ष्य उस तरफ होता नहीं; तेरा लक्ष्य राग और बन्ध के वश हो जाता है। अबन्धस्वरूप अनुभव में आता है, उस तरफ दृष्टि नहीं करके, बन्धस्वरूप राग में तेरा लक्ष्य है तो अबन्धस्वरूप अनुभव में आता है, उसका अनादर कर देते हैं, आ...हा...हा...! गजब बात है, प्रभु!

श्रोता : एक पंक्ति में तो कमाल हो गई!

पूज्य गुरुदेवश्री : कमाल है...! कमाल है...!! इसलिए एक पंक्ति उतावली से ली नहीं। सेठ ने कहा था न कि 'हिन्दी में लो!' तो दो घण्टा (हिन्दी में चला)। हिन्दी में यह सार आया! भाई! सार में सार आया है!! आहा...हा...!

आहा...हा...! पार नहीं तेरे (गुणों का)! अनन्त... अनन्त...

गुण का नाथ, जिसमें अनन्त (गुण की) संख्या पड़ी है – ऐसा अनुभूति (स्वरूप) भगवान द्रव्य.... आहा...हा...! सदा... सबको (अनुभव में आता है)। ऐसी बड़ी चीज, अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा सदा सर्व को स्वयं ही अनुभव में आता है। पर्याय में, स्वयं भगवान है, वही अनुभव में आता है; सबको आता है! आहा...हा...! ऐसा होने पर भी, **अनादि बन्ध के वश पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से...** आ...हा...हा...! उसको विकल्प–राग उठता है, उसके साथ एकत्वबुद्धि हो गयी है।

ज्ञान में सारी चीज अनुभव में आने पर भी, राग में एकत्वबुद्धि हो गयी है तो अनुभव में आता है, (उसके साथ) अनादि से एकत्वबुद्धि छूट गई है, आहा...हा...! ऐसा कैसा उपदेश!? परन्तु इसमें हमें क्या करना? ये करोड़ों रुपये का बड़ा धन्धा करना (ये ये करना)? दस–दस, बीस–बीस लाख के कपड़े और पचास लाख के कपड़े (लेना)! सारा दिन 'धन्धाखोर' (धन्धा करता रहता है)! 'धन्धाखोर'!

भगवान आत्मा...! कहते हैं कि तेरी पर्याय में – हथेली में अनुभव में आता है – ऐसा कहते हैं! हथेली में तो ऐसे नजर करनी पड़े... आहा...हा...! किन्तु (यहाँ तो) तेरी पर्याय में सारा आत्मा अनुभव में आता है!! भगवान सारा अनुभव में आता है परन्तु तेरा लक्ष्य उस पर नहीं। आहा...हा...! **अनादि बन्ध के वश पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से मूढ...** देखो! यहाँ (मूढ़) शब्द कहा! आहा...! एक ओर 'भगवान' कहा, एक ओर 'मूढ़' कहा! आहा...हा...! अन्तर में भगवान को नहीं देखते हैं और राग की दशा में एकत्वबुद्धि है, वे मूढ़ प्राणी हैं।

जानने की चीज जानने में आती है, उसकी तरफ दृष्टि नहीं और जो कुछ उसकी चीज नहीं, उसके साथ एकत्वबुद्धि होने से ज्ञान वहाँ रुक गया है। तेरा ज्ञान वहाँ राग में रुक गया है; इसलिए तेरे ज्ञान में भगवान जानने में आता है, फिर भी राग में रुकने से, भगवान तेरे ख्याल में नहीं आता। आहा...हा...! बात ऐसी है, भगवान! कभी सुनी न हो ऐसी! बाहर में ही बाहर में... हो... हा... हो... हा...! 'धमाधम चली ज्ञानमार्ग रह्यो दूर' 'धर्म के नाम से धमाधम चली और यह रहा दूर'! आहा...हा...! मूढ़! एक ओर 'भगवान' कहा और एक ओर 'मूढ़' कहा!

जिस पर्याय में भगवान दिखने में आता है – ऐसा आत्मा तुम नहीं जानते हो और राग के साथ एकत्वबुद्धि हो गयी। बस! एक राग किया तो मानो ओ...हो...हो...! हमने तो बहुत किया! (ऐसा मानता है)। अभी तो यहाँ शुभराग की बात है; अशुभराग के साथ तो एकत्वबुद्धि है, वह तो तीव्र है, परन्तु शुभराग के साथ एकत्वबुद्धि है – ऐसे मूढ़ को, **अज्ञानी जन को 'जो यह अनुभूति है वही मैं हूँ' – ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता....** अन्तर्दृष्टि करता नहीं और दिखने में आता है, फिर भी (वहाँ) दृष्टि नहीं (है) तो उसको आत्मज्ञान उत्पन्न नहीं होता। राग की एकताबुद्धि से अज्ञान उत्पन्न होता है। आहा...हा...!

ऐसे (आत्मज्ञान की) उत्पत्ति नहीं होने से **उसके अभाव से, अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान समान है...** अज्ञान के कारण, जैसे गधे के सींग नहीं है तो ऐसी श्रद्धा (नहीं हो सकती), (वैसे) आत्मा जानने में आया नहीं तो श्रद्धा कैसी? आहा...हा...!

गधे के सींग के श्रद्धान समान है इसलिए, श्रद्धान भी उदित नहीं होता... ऐसे जीव को समकित नहीं होता। आहा...हा... ! **तब समस्त अन्यभावों के भेद से आत्मा में निःशङ्क स्थिर होने की असमर्थता के कारण आत्मा का आचरण उदित न होने से...** उसको आत्मा की श्रद्धा नहीं होती, आत्मा का ज्ञान नहीं होता (और) आत्मा का आचरण नहीं होता। **इस प्रकार साध्य आत्मा की सिद्धि की अन्यथा अनुपपत्ति है।** साध्य जो आत्मा है, उसकी सिद्धि और उत्पत्ति नहीं (होती)। संसार की उत्पत्ति है, (साध्य की) सिद्धि नहीं। विशेष कहेंगे.....

मोक्षार्थी का परम कर्तव्य

आत्मा स्वयं परम आनन्द का धाम है। उसमें जो परिणति ढली है, वह परिणति उपशम आदि शुद्धभावरूप हुई है और रागादि उदयभावों का उसमें अभाव है। राग के अवलम्बन से तो आत्मध्यान होता नहीं परन्तु जो उपशम आदि पर्यायें, उन पर्यायों के अवलम्बन से भी आत्मध्यान नहीं होता। आत्मा के अखण्ड स्वभाव के अवलम्बन से वे उपशमादि निर्मलभाव प्रगट हो जाते हैं। क्षायिक श्रद्धा प्रगट हुई, उस पर्याय के अवलम्बन से दूसरी क्षायिक पर्याय प्रगट नहीं होती। उस–उस काल में अन्तर के शुद्धस्वभावरूप परम तत्त्व के अवलम्बन से ही क्षायिकभाव सदा हुआ करता है। उसमें राग के या पर के अवलम्बन की तो बात ही नहीं है। इसलिए मोक्षार्थी जीव को अन्तर्मुख होकर अपने एक सर्वोपरि परम तत्त्व का ही अवलम्बन लेना चाहिए, अर्थात् उसी का ध्यान करना चाहिए। उस ध्यान में भगवान का साक्षात्कार होता है और उसमें सब समाहित हो जाता है।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी)

प्रवचन – 3

'समयसार' 17, 18 (गाथा) का अन्तिम पेराग्राफ। हिन्दी में चले थे न? (इसलिए) बहनें–लड़कियाँ थोड़ा कम समझे हों तो फिर से स्पष्ट (करने के लिए गुजराती में लेते हैं)।

परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा... आ...हा...हा...! कैसा है प्रभु अन्दर? **अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा!** (है)। (अर्थात्) अनुभव हो सकता है – ऐसा यह भगवन आत्मा है। कल हिन्दी में चला था। यह आत्मा अन्दर ऐसा है। (ऐसा) सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में आया था (और) सन्तों ने उसकी–सिद्धान्त की रचना की है, यह भगवान आत्मा। **अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा** – ऐसा कहकर तो बुलाते हैं। आहा...हा...! हरेक आत्मा को इस प्रकार ही कहा (है)। प्रभु! तुम तो अनुभूतिस्वरूप भगवान हो न। आहा...हा...! **आबालगोपाल** (अर्थात्) बालक से लेकर वृद्ध को **सब को सदाकाल...** अर्थात् **स्वयं ही अनुभव में आने पर भी...** आहा...हा...! गाथा का अर्थ बहुत ऊँचा है। ऐसी बात दूसरी जगह इतने में नहीं।

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर, जिनेश्वर की दिव्यध्वनि में आया था। 'कुन्दकुन्दाचार्य' वहाँ (महाविदेह) गये थे, आठ दिन (वहाँ) रहे

थे। उसमें से अन्तर का माल जो मक्खन, वह भगवान के पास सुना और कितनी ही चर्चा श्रुतकेवली–मुनियों के साथ की थी। भगवान की दिव्यध्वनि तो समयानुसार होती है, आगे–पीछे नहीं होती, तत्पश्चात् कोई शङ्का–समाधान हो, वह श्रुतकेवलियों के पास समाधान हुआ। (वहाँ से आकर) फिर यह रचना की। आहा...हा...!

आबालगोपाल... आबाल, अर्थात् बालक से लेकर और वृद्ध को **सभी को सदाकाल,...** सबको सदाकाल **स्वयं ही अनुभव में आने पर भी...** आहा...हा...! क्या कहते हैं? ज्ञान की पर्याय में (अर्थात्) वह वस्तु त्रिकाल है, (उसका) ज्ञानगुण, उसकी वर्तमान अवस्था में, जो यह ज्ञात होता है, वह ज्ञात नहीं होता, वास्तव में तो अपनी पर्याय ज्ञात होती है। यहाँ तो इससे विशेष कहते हैं। यह (ऊपर कहा वह) तो व्यवहार है। यह सब ज्ञात होता है, जिसकी भूमिका में ज्ञात होता है, जिसकी सत्ता में, जिसके अस्तित्व में 'यह है' – ऐसा ज्ञात होता है, वह ज्ञान की पर्याय है। यह वस्तु उसमें (ज्ञान की पर्याय में) नहीं है। आहा...हा...! जिसके प्रकाश में–सत्ता में, पर्याय में, हाँ! द्रव्य–गुण की बात नहीं। इस पर्याय में यह सब जो दिखता है, वह यह नहीं दिखता नहीं (परन्तु) अपनी पर्याय की सामर्थ्यता उसे जानने की योग्यतावाली है; इसलिए उस पर्याय को जानने से पर को जानता है – ऐसा कहा जाता है। आहा...हा...!

ऐसा होने पर भी, तदुपरान्त पर्याय में द्रव्य जानने में आता हुआ होने पर भी, ऐसा कहते हैं, समझ में आया? आहा...हा...! पर्याय में यह जानने में आता है (ऐसा) नहीं; वह तो पर्याय जानने में आती

है क्योंकि उस चीज को तो ज्ञान की पर्याय छूती नहीं। जैसे, उस परवस्तु में ज्ञान की वर्तमान अवस्था तन्मय होकर नहीं रहती, वह तो भिन्न होकर रहती है; इसलिए उस पर्याय में यह जानने में आती है – ऐसा कहना वह व्यवहार है परन्तु उस पर्याय में उससे सम्बन्धित जो अपनी शक्ति है, ज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य (है), वह जानने में आती है। यह तो पर्याय तक बात रही।

अब, यहाँ विशेष कहते हैं। आहा...हा...! इस पर्याय में आबालगोपाल – सभी को सदाकाल अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा (अनुभव में आ रहा है)। अब, द्रव्य का लिया, (वह पहले) पर्याय की बात की।

सूक्ष्म पड़े, बापू! यहाँ ऐसे परदेश में यह बात कहाँ से आवे! आहा...हा...! अनार्य देश। इसमें यहाँ अभी बाहर से कितने ही व्यक्ति आये। 300 (व्यक्ति) आये! आहा...हा...! यह बात तो अलौकिक है, प्रभु! भले तुमको ऐसा लगे कि यह क्या कहते हैं? प्रभु! भगवान की वाणी अन्दर में से आती है, वह कहते हैं!! आहा...हा...!

पर्याय में भी यह जानने में नहीं आता किन्तु पर्याय जानने में आती है परन्तु तदुपरान्त यहाँ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि प्रभु! तेरी पर्याय में ऐसी ताकत है कि अकेले पर प्रकाशक(पने) जानते हो, इतनी ताकत नहीं। तेरी पर्याय में पर को प्रकाशित करता है, वह पर के कारण नहीं। स्वयं के कारण वह पर को प्रकाशित करती है, इतनी पर्याय की सामर्थ्य नहीं, परन्तु इस पर्याय की सामर्थ्य, द्रव्य को भी जानती है – ऐसी सामर्थ्य है। आ...हा...हा...! कल हिन्दी

आया था न! यह बहनों–लड़कियों को समझ में नहीं आया (हो) तो फिर से (लेते हैं) वह तो फिर से आये तो (भी) कोई नया तो आवे ही अन्दर। आहा...हा...!

प्रभु! प्रभु को कहते हैं। ऐसा कहा न? देखो! अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा – ऐसा कहा। आ...हा...हा...! अनुभव में (आने) योग्य अनुभव होने योग्य ऐसा भगवान आत्मा! पर्याय में पर प्रकाशित होता है – ऐसा नहीं क्योंकि पर्याय में पर्याय तन्मय है, पर्याय! पर्याय पर्याय में तन्मय है, (इसलिए) वह उसे जानता है – ऐसा कहना बराबर है परन्तु पर को जानता है (ऐसा कहने पर) उसके साथ तन्मय नहीं। तन्मय अर्थात् उसके सम्बन्ध का जुड़ाव नहीं; इसलिए पर को जानने के काल में भी पर्याय स्वयं को ही जानती है। समझ में आया? आ...हा...हा...! उस पर्याय में तदुपरान्त (अर्थात्) पर प्रकाशक है, यह स्वतः स्वभाव है; तदुपरान्त स्व-प्रकाशक स्वभाव है। स्व–परप्रकाशक स्वभाव।

स्व–पर प्रकाशक शक्ति हमारी,
तातैं वचन भेद भ्रम भारी।
ज्ञेयशक्ति दुविधा परगासी,
निजरूपा पर रूपा भासी।।

सूक्ष्म पड़ता हो, प्रभु परन्तु एक बार सुन तो! ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। यह तो कुदरती ही आ गया है। यहाँ यह परदेश में–अनार्य देश में कहाँ (ऐसा सुनने को मिले)। आहा...हा...!

भगवान आत्मा! इसकी पर्याय की सामर्थ्य, पर को जानने की नहीं (फिर भी) पर को–पर सम्बन्धी जानने की स्वयं की ताकत

है, उसको यह जानता है। तदुपरान्त इस पर्याय में... यह तो पर प्रकाशक की स्वतः सामर्थ्य हुई। पर प्रकाशक की स्वतः सामर्थ्य पर्याय में हुई परन्तु इस पर्याय में स्वतः सामर्थ्य स्वद्रव्य को जानने की भी सामर्थ्य है। समझ में आया? आ...हा...हा...! यह भगवान आत्मा, आबाल–गोपाल.... यहाँ तो द्रव्य लिया न? पहली बात तो पर्याय की थी, यह बात तो आ गई है परन्तु यहाँ तो अब द्रव्य लिया। जिस पर्याय की सामर्थ्य पर को जानती नहीं परन्तु पर सम्बन्धी अपनी पर्याय में इतनी सामर्थ्य है, उसको यह जानता है। आ...हा...हा...! इस पर्याय में इतनी ताकत (है कि) पर प्रकाश की (शक्ति) पर की अपेक्षा बिना–पर को जानने की ताकत पर की अपेक्षा बिना स्वतः पर्याय में जानने की ताकत है। यह जो पर्याय में स्वतः अनुभूति(स्वरूप) भगवान आत्मा! आ...हा...हा...! है? **सभी को** (अर्थात्) सभी को **सदा काल स्वयं ही...** (अर्थात्) परमात्मा ही पर्याय में अनुभव में आता है। आहा...हा...! यह बात अलौकिक बात है।

एक भाई ने लिखा है न? एक क्षुल्लक थोड़ा सुनने आते थे। बुद्धि बहुत कम थी परन्तु प्रेम बहुत था। वह तो गुजर गये, बाद में उन्होंने थोड़ा ग्रहण किया था। 'पर से खस, स्व में बस, यह थोड़ा रच तेरे लिए बस!' आहा...हा...! कैसे बैठे...? पर की ओर झुकाववाला अनादि (का) भाव मानों पर को ही जानता हूँ! पर्याय में भी जानता है, पर को ही जानता हूँ। भगवान! बात तुझे कठोर लगेगी नाथ! किन्तु वस्तु का स्वरूप प्रभु ऐसा है। आहा...हा...! यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर के श्रीमुख से निकली हुई दिव्यध्वनि, उसका सार यह 'समयसार' है। इसमें यह कहा था।

आ...हा...हा...! अरे...! एक ही गाथा बस है न! भाई! कल की यह बात फिर से आई है। यह गुजराती में आई, (कल) हिन्दी में थी। बहनों–लड़कियों को समझ नहीं आया हो (इसलिए) आज गुजराती में लिया। दोपहर में एक–दो बहनें आती हैं। सबेरे थोड़ा कामकाज होता है (इसलिए नहीं आती)!!

आहा...हा...! माताएँ, बहने–लड़कियाँ सभी भगवान हैं। अन्दर तो भगवानस्वरूप हैं। आ...हा...हा...! बहिन ने (वचनामृत में) कहा नहीं? हम तो सभी को चैतन्य सिद्धस्वरूप देखते हैं। इनके आत्मा को यह चाहे जो मानते हों लेकिन हमें तो पर्यायबुद्धि चली गयी है, इसलिए इनको पर्यायबुद्धिवाला न देखकर, इनको चैतन्य सिद्ध भगवान आत्मा है, वैसे वे दिखायी देते हैं। आहा...हा...! वह भी पर्याय में पर का जानना होता है। परद्रव्य शुद्ध चैतन्य भगवान को जानना (होता है), वह भी पर्याय में (होता है)। आहा...हा...!

पर्याय समझ में आती है? अवस्था! वस्तु जो त्रिकाल आत्मा है, (वह) अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु है। अनादि से है (और) अनन्त काल रहेगा। इस वस्तु की उत्पत्ति नहीं, वैसे ही विनाश नहीं; वह उसके स्वभाव की सामर्थ्य से खाली नहीं। उसके स्वभाव की सामर्थ्य से खाली नहीं – ऐसा जो भगवान आत्मा, शरीररूपी मन्दिर में भगवान विराजते हैं, इसकी पर्याय में पर को जानने की अपेक्षा भी नहीं। पर्याय में स्वयं को जानता है, उसमें जानने में आ जाता है – ऐसा कहना व्यवहार है। आहा...हा...! अनुभव में सदाकाल स्वयं आता हुआ भी **अनादि बन्ध के वश...** क्या कहते हैं? तो ऐसा परन्तु इसकी दृष्टि राग के सम्बन्ध में जुड़ान हुई है। राग के सम्बन्ध

में जुड़ान है, अर्थात् राग का बन्ध है; भगवान अबन्धस्वरूप है। आहा...हा...! वस्तु है, वह अबन्धस्वरूप है। अनुभूति(स्वरूप) भगवान (आत्मा) कहा न? किन्तु पर्याय में राग के साथ सम्बन्ध कर (लिया है)। एक समय की पर्याय के साथ, राग के साथ सम्बन्ध (कर लिया है)। सम्बन्ध, यह बन्ध... सम्बन्ध, वह बन्ध! इस सम्बन्ध के बन्ध के वश, आहा...हा...!

अनादि बन्ध के वश पर (द्रव्यों के) साथ एकत्व के निश्चय से... आहा...हा...! इस राग को जानने पर इसकी एकत्वबुद्धि होती है; इस कारण इसको द्रव्यस्वभाव जानने में नहीं आता। इसकी पर्याय की सामर्थ्य–पर्याय की ताकत चैतन्य पूर्णानन्द को जानने की ताकत से ही सदा रही है, तथापि उस पर्याय की दृष्टि द्रव्य के प्रति जाती नहीं और उस पर्याय की दृष्टि पर्याय के प्रति और राग के प्रति होने से एकत्वबुद्धि (होती है)। आहा...हा...! (उस) **'एकत्वपने के निश्चय से मूढ़...'** एक ओर 'भगवान' कहकर बुलाया, आहा...हा...! एक ओर मूढ़ कहकर बतलाया... बतलाया! **निश्चय से मूढ़ जो उसको 'यह अनुभूति है वही मैं हूँ,...'** (अर्थात्) इस जानने में अन्दर अनुभूति-ज्ञान आता है, पर्याय में जानने में ज्ञान आता है, वही मैं हूँ – अज्ञानी को, ऐसी बुद्धि (अर्थात्) **ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता...** आहा...हा...!

आत्मज्ञान अर्थात् आत्मा (का ज्ञान) आत्मज्ञान में पर्याय भी नहीं ली। यहाँ तो 'आत्मज्ञान' कहा। संयोग का तो ज्ञान नहीं, राग का तो नहीं, पर्याय का भी नहीं; आत्मज्ञान। द्रव्य जो भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ है, प्रभु! (उसका ज्ञान, वह आत्मज्ञान)। इसमें भेद और विवाद और झगड़ा कहाँ है, प्रभु!

आहा...हा...हा... ! परमात्मस्वभावरूप से विराजमान (है), प्रभु ! किसकी साथ तेरा विवाद और झगड़ा हो ? नाथ ! आहा...हा... !

कहते हैं कि राग के साथ एकत्व से मूढ़ अज्ञानी को 'यह अनुभूति है, वही मैं हूँ' (अर्थात्) यह ज्ञान जानने में आता है, वही मैं हूँ – ऐसा न होने से – ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता। आहा...हा... ! जाननेवाला ज्ञान, वह मैं हूँ – ऐसा आत्मज्ञान (उदित नहीं होता)। आत्मा अर्थात् द्रव्य; पर्याय में द्रव्य का ज्ञान (अर्थात्) आत्मज्ञान उदित नहीं होता। आहा...हा... ! है ? आ...हा...हा... ! **और उसके अभाव से...** ज्ञान में जानने में आता हुआ भी, वह पर्याय को उसके सन्मुख नहीं करता; इस कारण जानने में आता हुआ भी, जानता नहीं... जानने में आता हुआ भी, जानता नहीं ! आ...हा...हा... !

थोड़ा सूक्ष्म पड़ेगा, प्रभु ! किन्तु यह बात कल आ गयी थी। दिमाग में ऐसा लग रहा था कि बहनें–लड़कियाँ कदाचित् कोई हिन्दी न समझती हों तो फिर से लूँ ! इसमें तो फिर से लो तो भी भगवान ही भगवान की बात है ! ! आहा...हा... ! भगवान अन्दर देह में विराजमान है, कैसे जँचे प्रभु ! आहा...हा... ! एक उड़द की दाल एकरस न हुई हो... 'एकरस' अर्थात् (क्या होता है यह पता है) ? दाल चढ़कर ऐसी पानी में एकमेक न हुई हो तो ढ़ीचणी उठे – किसने ऐसा किया ? ऐसी उड़द की दाल ! मेल नहीं खाती। ऐसों को यह भगवान आत्मा को समझाना ! आहा...हा... !

भगवान ! तू ऐसा है, हाँ ! चाहे जिस प्रकार तू दूसरों को एकरूप भले माने परन्तु वे एकरूप नहीं होता। वह वस्तु त्रिकाली है,

वह एकरूप नहीं होती, नाथ! आ...हा...हा...! तू भले एकरूप मान...। आहा...हा...! किसी के लड़के को अपने लड़के रूप तू मान परन्तु वह (तेरा) नहीं होता। आहा...हा...! कुंवर गोद ले हैं न? गोद... गोद...! बाद में (कहता है) 'हमारा बेटा' तो भी वह कोई वास्तव में इसका बेटा नहीं है। ऐसे तू चाहे जैसा प्रभु! परन्तु तेरा आत्मद्रव्य जो अन्दर है, उसको जानने की ताकतवाला ज्ञान है, उसका तो कभी अभाव नहीं होता। तेरी मान्यता में अन्तर पड़ता है। आहा...हा...!

ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता और उसके अभाव से अज्ञात का श्रद्धान... जो चीज ही जानने में आई नहीं (तो उसकी श्रद्धा किस प्रकार हो?) आहा...हा...! अब इसमें बाहर के झगड़े क्या हैं, प्रभु? व्यवहार के झगड़े की (बात को) छोड़कर एक ओर रख। इस अन्तर तत्त्व को निहार न, अन्दर भगवान है। आहा...हा...! कहते हैं, **अज्ञात का श्रद्धान...** जो चीज ख्याल में ही (आई) नहीं उसका श्रद्धान किस प्रकार हो? गधे के सींग नहीं, तो (वह चीज) ख्याल में ही नहीं आयी, उसकी प्रतीति किस प्रकार (हो)? जो चीज ज्ञान में – ख्याल में आयी नहीं, उसकी प्रतीति किस प्रकार (हो)? ऐसे ही ज्ञान में आत्मा ख्याल में नहीं आया, उसकी प्रतीति किस प्रकार करेगा? हम आत्मा को मानते हैं – ऐसा भले बोले, किन्तु उसके ज्ञान में आत्मा जानने में नहीं आया; इस कारण उसकी प्रतीति और यथार्थ विश्वास नहीं आया। आ...हा...हा...! यह तो सभी को जवानों को समझ में आये ऐसा है। युवा है कहाँ, प्रभु! यह युवा भी नहीं, वृद्ध भी नहीं, बालक भी नहीं, स्त्री भी नहीं, पुरुष भी नहीं; वह पर्याय जितना भी नहीं। आ...हा...हा...हा...!

महा सच्चिदानन्द प्रभु! भगवत् मूर्ति अन्दर आनन्द का नाथ! उसको सुना नहीं, प्रभु! उसने उसकी तरफ लक्ष्य किया नहीं। प्रभु! आहा...हा...!

इस कारण उसके जानने के अभाव से, **अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान के समान होने से...** आहा...हा...! जिस ज्ञान की पर्याय में जानने में आया, फिर भी जानता नहीं, उसे जानता नहीं। उसे जाने बिना की श्रद्धा गधे के सींग जैसी है। गधे के सींग होते नहीं तो जानने में आते नहीं तो श्रद्धा किसकी? ऐसे भगवान आत्मा, ज्ञान की पर्याय में जानने में आता नहीं तो इसकी श्रद्धा किसकी? आहा...हा...!

कहो, समझ में आया? ऐसी बातें हैं। ऐसा उपदेश! प्रभु! ऐसा सुनने का योग मिला है।

मुमुक्षु : लाभ की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा...हा...हा...! हमारे तो वहाँ हमेशा चलता है परन्तु यहाँ तो अब आ पड़े हैं! परन्तु यह बात अन्दर से आयी है!! आहा...हा...! आहा...हा...! तुम्हारा आग्रह था न!

मुमुक्षु : नैरोबी में आपका भाव बहुत था।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा...हा...हा...! लोगों को उत्साह है, प्रेम है, प्रभु! तेरे घर की बात है; यह कोई पर की नहीं। तीन लोक के नाथ की कही हुई बात है। प्रभु! क्या कहें? तीन लोक के नाथ को हमने साक्षात् सुना है! यह सुनी हुई अन्दर की बात है, वह बात आती है। आहा...हा...! आ...हा...हा...! पक्ष के व्यामोह के कारण न जँचे, परन्तु प्रभु! पक्ष का व्यामोह छोड़ दे।

पर्याय में ऐसा भगवान जानने में आने पर भी.... नहीं जाने हुए की श्रद्धा तो गधे के सींग जैसी है। जो चीज ही ख्याल में नहीं आई, जो वस्तु ही ज्ञान में–ख्याल में नहीं आई 'उसकी श्रद्धा करो!' परन्तु किस प्रकार श्रद्धा करे? वह चीज ही ख्याल में आई नहीं, उसकी श्रद्धा किस प्रकार करना? आहा...हा...! इसकी ज्ञान की पर्याय में पर्यायवान प्रभु–अनुभूतिस्वरूप भगवान, ज्ञान में आया नहीं, उसकी श्रद्धा किस प्रकार करना, प्रभु! ज्ञान में चीज आवे कि यह मक्खन है, अथवा यह घी है अथवा यह दूध है, ये ख्याल में आवे, तब तो उसका विश्वास आवे, परन्तु गधे के सींग ख्याल में आते हैं? ख्याल में नहीं आते तो श्रद्धा किसकी? इसी प्रकार भगवान आत्मा, ज्ञान की पर्याय में, वह जानने में नहीं आवे,... त्रिकाल वस्तु भगवानस्वरूप, वह दृष्टि में नहीं आवे और 'श्रद्धा करो!' – ऐसा कहे, वह तो खरगोश के सींग की श्रद्धावत् श्रद्धा है। आहा...हा...!

भाई! ऐसी बातें हैं, प्रभु! थोड़ी कठिन पड़े परन्तु यहाँ तो 15 दिन तो हुए अब! अब यहाँ तीन दिन हैं। आहा...! आ...हा...हा...! ऐसी बात तो न सुनी हो, उसको कठिन पड़ती है। आहा...हा...! बाहर में ही रुक जाता है, पूरे दिन, धन्धा–पानी, पाप और यह और वह!! भले 5–25 लाख महीने में पैदा होते हों। धूल में इसने किसे पैदा करना, प्रभु! यह आत्मा तीन लोक का नाथ हाथ न आवे, वहाँ तक तू रंक और भिखारी है! विद्यमान लक्ष्मी हाथ न आवे और अविद्यमान हाथ आवे,... यह बाहर की लक्ष्मी अविद्यमान (है)। वह आत्मा में नहीं है; आत्मा की पर्याय में नहीं, आत्मा के द्रव्य –गुण में भी नहीं। यह विद्यमान लक्ष्मी तो द्रव्य–गुण में है। द्रव्य,

अर्थात् वस्तु और उसके गुण (अर्थात्) शक्ति। उनमें विद्यमान चीज अनुभूति (स्वरूप) भगवान हैं। उसकी पर्याय में यदि उसे पहचानने में न आवे तो उसकी श्रद्धा कैसी? खरगोश के सींगवत् श्रद्धा है। हम आत्मा को मानते (हैं) – ऐसा भले कहे, परन्तु वह तो गधे के सींग जैसी श्रद्धा है। आहा...हा...!

कहते हैं, प्रभु! अरे! परमात्मा तुझे 'प्रभु' कहकर कहते हैं! अरे...! तुझे अब शर्म नहीं आती नाथ! आ...हा...हा...! सन्त, भगवान तुझे भगवानरूप से कहें! यह बड़ों का *कहेण* नहीं फिरता नाथ! आहा...! लड़के की सगाई करनी हो और 50–100 व्यक्तियों का सम्बन्ध आया हो (तो) बड़े घर की कन्या हो और (उसे) पसन्द करते हैं, भले सहज ही काली हो या साधारण हो! क्योंकि 5–25 लाख लेकर आयेगी, उसके पिता की एक ही पुत्री है, पुत्र नहीं, कोई नहीं – ऐसा जानकर उसको पसन्द करता है। आहा...हा...! (यहाँ) कहते हैं कि जाने बिना की श्रद्धा, वह गधे के सींग जैसी है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : गुरुदेव! आपका सन्देश हम स्वीकार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा...हा...! (अन्दर)? **अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान के समान होने से श्रद्धान भी उदित नहीं होता...** (अर्थात्) उसको सम्यक्त्व नहीं होता। आहा...हा...! अज्ञान की श्रद्धा यह किस प्रकार करेगा? जानने में चीज आई नहीं उसकी प्रतीति, उसका विश्वास किस तरह करेगा? इसलिए उसको श्रद्धा–समकित प्रगट नहीं होता। वह वस्तु जानने में आई नहीं, इस कारण उसकी श्रद्धा–विश्वास

उसको आता नहीं। आ...हा...हा...! भाषा तो भाषा! समझ में आया? आहा...हा...!

समस्त अन्यभावों के भेद से... इसलिए कहते हैं कि एक तो ज्ञान हुआ नहीं – आत्मज्ञान हुआ नहीं और ज्ञान बिना श्रद्धा भी नहीं हुई, तो अब कहते (हैं) चारित्र भी नहीं होता। आहा... है? **श्रद्धान भी उदित नहीं होता, तब समस्त अन्यभावों के भेद से...** (अर्थात्) सभी विकल्पों की भिन्नता से, **आत्मा में निःशंक स्थिर होने की असमर्थता के कारण...** स्वरूप में निःशंकपने स्थिरता, इसका नाम चारित्र, लेकिन यह श्रद्धा ही जहाँ हुई नहीं, वस्तु ही (जानी) नहीं (तो) जाने बिना की श्रद्धा खोटी और श्रद्धा (हुए) बिना उसको अन्तर में स्थिर होने में निःशंकता आती नहीं। जब तक श्रद्धा में निःशङ्कता न आये उस कारण **निशङ्क स्थिर होने की असमर्थता के कारण आत्मा का आचरण उदित नहीं होने से...** आत्मा का चारित्र, आत्मा का आचरण, आत्म-आचरण (होता नहीं)। आहा...हा...! लोग जो नैतिक सदाचरण कहते हैं – परस्त्री का सेवन न करे, शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, परम्परानुसार पाँच तिथियों में कन्दमूल आदि न खाए कि पाँच तिथियों में स्त्री आदि का सेवन न करे – ऐसा किसी का नैतिक जीवन होता है। यह जीवन है, वह तो लौकिक (नैतिक सदाचरण) है। यह कोई वास्तविक जीवन नहीं। आहा...हा...! इसके आचरण के बिना (अर्थात् कि) प्रभु के आचरण बिना... आहा...हा...! आत्मा का सत् आचरण... अन्तर में (अभी) श्रद्धा हुई नहीं तो आचरण कहाँ से आये? किसमें स्थिरता हो? जाना नहीं (और) जाना नहीं, उसकी श्रद्धा किस प्रकार (हो)? और श्रद्धा बिना स्थिरता किस

प्रकार? आहा...हा...! कहो! तेरी बात है प्रभु! सुनकर विचार में लेने जैसी है? बापा! आहा...हा...!

आहा...हा...! **निशङ्क स्थिर होने की असमर्थता के कारण आत्मा का आचरण उदित नहीं होने से...** आत्मा का आचरण, अर्थात् कि ज्ञानस्वरूप में स्थिर होना। ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु – सहजात्मस्वरूप में स्थिर होना, उसका नाम आचरण; कोई क्रियाकाण्ड और राग को करना, वह कोई आचरण नहीं। आनन्द का नाथ प्रभु, ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द प्रभु का जिसको ज्ञान हुआ नहीं, तो ज्ञान बिना श्रद्धा नहीं, तो श्रद्धा बिना आचरण कहाँ से आये? आहा...हा...! थोड़ी बात बहुत कही गयी है, बापू! **असमर्थता के कारण आत्मा का आचरण उदित नहीं होने आत्मा को नहीं साध सकता।** लो! यह आत्मा को साधता नहीं, वह राग को साधता है! राग को, पुण्य को और पाप को साधता है, भाई! **इस प्रकार साध्य आत्मा की सिद्धि की अन्यथा अनुपपत्ति है।** साध्य जो आत्मा की मुक्ति (उसकी उत्पत्ति नहीं होती)। ध्येय–आत्मा, साध्य–मुक्ति। यह साध्य (आत्मा की) सिद्धि की अन्यथा अनुपपत्ति (है)। इस प्रकार उसको सिद्धि की उत्पत्ति नहीं होती; क्योंकि आत्मा का ज्ञान नहीं; ज्ञान नहीं तो श्रद्धा नहीं; श्रद्धा बिना चारित्र नहीं (और) चारित्र बिना सिद्धि नहीं। आहा...हा...! कहो। (यह) गुजराती इतना हुआ!

इसके अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं

अरे रे! जिसे चौरासी के अवतार का डर नहीं है, वह जीव आत्मा को समझने की प्रीति नहीं करता। अरे! मुझे अब चौरासी के अवतार का परिभ्रमण किस प्रकार मिटे ? – ऐसा अन्दर में भव–भ्रमण का भय लगे तो आत्मा की दरकार करके सच्ची समझ का प्रयत्न करे।

देखो, यह जीव करोड़ों रुपये की आमदनीवाला सेठ तो अनन्त बार हुआ है और अनन्त बार ही घर–घर जाकर भीख माँगकर पेट भरनेवाला भिखारी भी हुआ है; आत्मा के भान बिना पुण्य करके बड़ा देव भी अनन्त बार हुआ है और पाप करके नारकी भी अनन्त बार हुआ है परन्तु अभी भी इसे भव–भ्रमण से थकान नहीं लगती है। आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! 'अब मुझे भव नहीं चाहिए' – इस प्रकार यदि तुझे भव–भ्रमण से थकान लगी हो तो आत्मा की प्रीति करके उसका स्वरूप समझ! इसके अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है।

– पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी